

निर्मल धारा धर्म की प्रकाशकीय	3
1. धर्म क्या है	5
धर्म शब्द का इतिहास	7
धर्म और संप्रदाय	9
धर्मधारण	12
सत्य दर्शन	14
कर्मकांड	16
2. शील धर्म का पहला चरण	18
धर्म से सुरक्षा	18
धर्म एक एक व्यक्ति का	20
शील पालन	21
शील पालन क्यों ?	24
धर्म को स्वानुभव से जानो	26
चैन की बसी	28
धर्म धारण करें ते ही लाभ होता है	31
3. समाधि धर्म का दूसरा चरण	35
मन को वश में करना	38
शब्द का प्रयोग क्यों नहीं ?	39
अभ्यास कैसे करें ?	40
रागद्वेष का उदगम	43
मानस का स्वभाव पलटें	45
संतों की वाणी में विपश्यना की झलक	46
आत्मदर्शन	49
वैज्ञानिक खोज	50
4. विपश्यना धर्म का तीसरा चरण	55
तारक कौन ?	55
सत्य ही धर्म है	57
विश्व गुरु भारत	60
टेढ़ी खीर	62
सत्य की अनुभूति	63
विपश्यना	65
प्रकंपन ही प्रकंपन	66
छह दरवाजे	69
मानस के चार खंड	69

विद्या और अविद्या	71
5. धर्म जीवन में उतरे	77
शील सदाचार का जीवन जीना	77
मन को निर्मल करना	78
,आस्रव विहीन कैसे बनें	83
मेरा मालिक मैं स्वयं	86
कर्म का फल निश्चित	87
समझना पर्याप्त नहीं अभ्यास आवश्यक	89

प्रकाशकीय

विपश्यन्ता साधना के आचार्य पूज्य श्री सत्यनारायण गोयन्का भारत में 1669 से ध्यान की इस विद्या का प्रशिक्षण दे रहे हैं। उन्होंने यह साधना विधि ब्रह्मदेश में पूज्य सयाजी ऊ वा खिन से सीखे और बहुत लाभान्वित हुए। तदनंतर अपने गुरु के कुशल मार्ग-निर्देशन में निरंतर अभ्यास करते हुए इए विद्या में पारंगत हुए। यह विद्या सार्वदेशिक, सार्वजनिक और सर्वकालिक है- देश, जाति और समय की सीमा से सर्वथा विमुक्त। इसमें संपूर्ण मानव जाति का कल्याण समाया देख पूज्य गोयन्काजी ने निर्णय किया कि वे व्यवसाय से निवृत्ति लेकर अपना सारा शेष जीवन इसी के शिक्षणकार्य में लगायेंगे। उनके इस शुभ संकल्प में उनके पूज्य गुरुदेव का प्रोत्साहन और आग्रह निहित था।

ध्यान की यह विधि भारत की पुरानी अनमोल विद्या है जो आज से लगभग 25000 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने खोज निकाली थी। किन्ही कारणों से यह हमारे देश से विलुप्त हो गयी। पड़ोसी ब्रह्मदेश ने गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा इसे सुरक्षित रखा और अब अपने देश की इस अमूल्य धरोहर की वापस यहां लाने का गौरवमय श्रेय पूज्य श्री गोयन्काजी को है।

हम धर्म शब्द का सही अर्थ भूल जाये और संप्रदाय को ही धर्म मानने लगे हैं। आज जबकि धर्म के नाम पर चारों ओर इतनी आराजकता फैली हुई है, यह सांप्रदायिकता-विहीन विद्या घोर अंधकार में प्रकाश-स्तंभ सदृश है। मानवा जीवन में बचपन से ही प्रतिस्पर्धा का तनाव शुरू हो जाता है जो बढ़ता ही चला जाता है। उसके रहते सुख, चैन और संतोष दुर्लभ हो जाते हैं, शब्द मात्र रह जाते हैं। जीवन के तूफानी झंझावात में हम शांति और धैर्य से साथ परिस्थिति का सामना कैसे कर सकें, हम सही निर्णय लेने में कैसे सक्षम हो सकें, हमारे परस्परिक सांसारिक समस्याओं में अत्यंत सहायक है। इसके अलावा यह हमें आध्यात्म के ऊंचे से ऊंचे धरातल तक ले जाने में भी पूर्ण सक्षम है।

इस विधि से हमारी अकुशल वृत्तियां - ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध अहंकार धृणा आदि क्षीण होती चली जाती हैं और कुशल वृत्तियां- मैत्री करुणा क्षमा शील सेवा आदि अंकुरित होती हैं और फलती फूलती हैं।

सौभाग्यवश, ऐसी दुर्लभ विद्या आज सुलभ है और इसके द्वारा हमें अपना सर्वविध मंगल साधने की प्रेरणा मिले, इसलिए समय-समय पर पूज्य गुरुजी के प्रवचन विभिन्न स्थानों पर आयोजित किय जाते हैं।

अब इन्हे पुस्तक रूप में प्रकाशित किय जा रहा है ताकि अधिकाधिक लोग इसका लाभ उठा सकें। इसमें उल्लेखित साधना विधि को पढ़ कर अपने आप अभ्यास आरंभ न कर दें। किसी भी विद्या को सीखने के लिए उचित वातावरण एवं कुशल निर्देशन अति जरूरी है। यह तो मन की तलस्पर्शी गहराइयों तक जाने की गंभीर विद्या है। अतः मार्ग निर्देशन के अभाव में स्वयं सीखने का प्रयत्न करना हानिकारक हो सकता है।

विपश्यना ध्यान सीखने के लिए दस दिनों के शिविर में भाग लेना आवश्यक है। इन दस दिनों के दौरान शिविर-स्थल पर ही रहना होता है, जहां आवास और भोजन आदि की समुचित व्यवस्था रहती है। शिक्षण , भोजन और आवास सहित किसी भी सुख-सुविधा का कोई शुल्क नहीं लिया जाता। शिविर के अंत में साधक अपनी इच्छानुसार दान दे सकते हैं। शिविरों की सारी व्यवस्था शुद्ध चित्त से परमार्थभाव से दिये गये दान से ही चलती है। ये शिविर विभिन्न साधना केंद्रों में तथा अन्य उचित स्थानों पर संचालित किये जाते हैं। अब तक भारत तथा विदेशों के विभिन्न शहरों में अनेक साधना केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। इन केन्द्रों की पूर्ण सूची पुस्तक के आखरी पृष्ठों में उपलब्ध है। शिविर में सम्मिलित होने के नियम तथा आरक्षण एवं कार्यक्रम सुविधानुसार किसी भी केंद्र से पत्र द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग चाहे वे हिन्दु हो या मुस्लिम, जैन ,ईसाई बौद्ध हो या सिख-सभी आते हैं। बच्चों से ले कर वृद्ध बुजुर्गों तक सब उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी आते हैं तो दूसरी और बिल्कुल निरक्षर लोग भी आते हैं। अत्यंत धन-संपन्न भी आते हैं और बिल्कुल धन हीन भी। पुरुष -नारी तथा डाक्टर वकील इंजीनियर व्यापार-उद्योगों के संचालक सभी आते हैं। किसी भी विपश्यना-शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम देखा जा सकता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लाभान्वित होते हैं।

इस विद्या के माध्यम से धर्म धारण कर अधिक से अधिक लोग अपना सर्वविध कल्याण साथ लेने की प्रेरणा पा सकें, यही मंगल कामना है। इस प्रकाशन का यही ध्येय है।

प्रकाशन समिति
विपश्यना विशोधन विन्यास

1 धर्म क्या है

शांति किसे नहीं चाहिए? सभी तो अशांत हैं, बैचेन हैं, व्याकुल हैं, दुखियारे हैं।

किसी को इस बात को दुख है तो किसी को उस बात का दुख । आज एक बात का दुख है तो कल किसी दूसरी बात का। संसार के सारे लोग दुख-संतप्त हैं। इस दुखो से बाहर कैसे आये? इन दुखों से छुटकारा कैसे पाये? सही अर्थ में सुख -शांति का जीवन कैसे जी सके?

हमारे देश के ऋषियों ने , मुनियों ने सत्पुरुषों ने महापुरुषों ने बुद्धों ने अरंहतो ने इसी बात की खोज की है दुखो से छुटकारा कैसे मिले? सही अर्थ में सुख शांति कैसे प्राप्त हो? सब एक ही परिणाम पर पहुचे कि धर्म के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं मिल सकती। लेकिन धर्म तभी सुख शान्ति प्रदान करता है जब कि उसे धारण किया जाये। धर्म धारण तो करें नहीं परन्तु उसकी चर्चा करें या उस पर बाद विवाद करें तो उस पर सुख शान्ति नहीं मिलती । अतः समझें कि धर्म धारण कैसे करें।

देश का बहुत बड़ा दुर्भाग्य हुआ कि सारे देश ने धर्म शब्द का अर्थ ही भुला दिया। कही भी जब धर्म संबन्धी चर्चा होती है तो सुनने वालो के कान खड़े होते है कि यह आदमी कौन से धर्म की बात कहेगा ? हिंदु धर्म की या बौद्ध धर्म की ,जैन धर्म की या ईसाई धर्म की ,सिक्ख धर्म की या पारसी धर्म की या यहूदी धर्म की-कौन से धर्म की बात कहेगा? बड़ा दुर्भाग्य हुआ कि धर्म के साथ यह विशेषण लग गये।: मानो धर्म का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं।

धर्म का महान अस्तित्व है परन्तु उसके साथ यह विशेषण लग गये तो धर्म धर्म नहीं रहा। जिस दिन धर्म को हिन्दु धर्म कहना शुरू कर दिया, उस दिन हिन्दु प्रमुख हो गया,धर्म नेपथ्य में चला गया। जिस दिन धर्म को बौद्ध धर्म कहना शुरू कर दिया बौद्ध प्रमुख हो गया धर्म खो गया, जैन धर्म कहना शुरू कर दिया तो जैन पहले धर्म खो गया । धर्म लुप्त हो गया।धर्म को इन विशेषणों की जरूरत नहीं होती। धर्म कभी हिन्दु नहीं होता,बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिक्ख या पारसी नहीं होता। ये तो कुछ लोगो के समूह है-एक प्रकार के उत्सव तौहार मनाने वाले ,तीज तौहार मनाने वाले, व्रत-उपवास करने वाले,। ये किसी एक प्रकार के रहन सहन वाले, खान-पान वाले, दार्शनिक मान्यता मनाने वाले लोगो के समूह है,संगठन है, जमाते है,संप्रदाय है जो हिन्दु बौद्ध जैन, ईसाई , मुस्लिम

आदि हो सकते हैं परन्तु धर्म नहीं हो सकते। धर्म का इनसे दूर परे का कोई नाता नहीं है। धर्म के नाम पर हम कहा उलझ गये ?

भारत में ढाई हजार वर्ष पहले धर्म की परिभाषा थी-“धारेती”ति धम्मो’- धारण करे सो धर्म। क्या धारण करे ? किसको धारण करे ? तो समझाया- “अत्तनो पन सभावं धारेती”ति धम्मो’। अपना स्वभाव धारण करता है, अपना लक्षण धारण करता है, इस अर्थ में धर्म कहलाता है। हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य हुआ कि धर्म का एक विशाल साहित्य हमारे देश से लुप्त हो गये , उसकी सारी व्याख्या भूल गये, उसका पंरमपरागत इतिहास भूल गये, अपना स्वभाव धारण करे सो धर्म-भारत की इस पुरानी व्याख्या का, इस परिभाषा का आज भी भूलें-भूलें कही कही प्रयोग हो जाता है।

आज भी कहते हैं, अग्नि का धर्म है जलना और जलाना। यानी अग्नि का स्वभाव है जलना और जलाना। स्वयं जलती है और उसकी लपेट में जो आए उसे भी जलाती है, तभी अग्नि है। जो जलती नहीं, जलाती नहीं, वह और कुछ हो सकती है, पर अग्नि नहीं। इसी प्रकार कहें -बर्फ का धर्म है शीतल होना और शीतल करना। यह उसका स्वभाव है। इसमें हिन्दू, बौद्ध ,जैन या ईसाईपन की क्या बात है ?

आज भी कहते हैं कि सारे प्राणी मरणधर्मा है। मरना उनका स्वभाव है। जो प्राणी जन्म लेता है मरने के लिए ही जन्म लेता है। सारे प्राणी जराधर्मा है-जर्जरित होते ही है। सारे प्राणी व्याधिधर्मा है-उनको कोई न कोई रोग लग ही जाता है। यह स्वभाव है, प्रकृति है। भारत की पुरानी भाषा में धर्म का यही अर्थ था-स्वभाव है, प्रकृति का नियम है, कुदरत का कानून है, विश्व का विधान है। इसी को ऋत कहते थे। ऋत यानी कानून - ऐसा ऐसा होगा तो यह परिणाम आएगा ही; ऐसा-ऐसा नहीं होगा तो यह परिणाम नहीं आएगा। कितनी वैज्ञानिक बात है। इसमें हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुस्लिम, या सिक्खपन, की क्या बात है ? परन्तु धर्म को ले कर कैसे संप्रदायो में उलझ गये, दार्शनिक मत मतांतरों में उलझ गये, कर्मकांडों में उलझ गये और ऐसे उलझे कि धर्म खो बैठे।

हम अपने भीतर कोई भी विकार जगाये- क्रोध जगायें या द्वेष जगायें या दुर्भावना जगायें, तो क्रोध का, द्वेष का ,दुर्भावना को स्वभाव है कि हमें व्याकुल बना देगा। कोई भी क्रोध जगाकर देख ले, तत्काल व्याकुल हो जायेगा। चाहे वे अपने को हिन्दू कहे या बौद्ध ,ईसाई सिक्ख पारसी कहे;कोई अंतर नहीं होगा। यह धर्म है प्रकृति का नियम है, उसका स्वभाव है। हमने जैसे ही भीतर विकार जगाया वैसे ही प्रकृति दंड देना शुरू कर देती है, वह अपनी जगह है। यहां तो अभी दंड मिलने लगता है, तत्काल दंड मिलने लगता है।

किसी अच्छे राज्य के जो नियम बनते हैं, वे सब पर एक जैसे लागू होते हैं। सब पर एक जैसे लागू नहीं हो तो वह अच्छा राज्य नहीं हो सकता। जो राज्य के नियम ताड़ता है, उसे राज्य की ओर से दंड मिलता है। लेकिन किसी ने राज्य का नियम तोड़ा और किसी को पता ही नहीं चला अथवा पता चल गया हो फिर भी उन्होने मुंह फेर लिया हो। कोई

कार्यवाही नहीं की, तो कोई दंड नहीं मिला। परंतु कुदरत के राज्य में, प्रकृति के राज्य में या हो कहे परमात्मा के राज्य में ऐसा नहीं हो सकता। कोई नियम तोड़े और दंड से बच जाये, यह असंभव बात है।

जैसे ही नियम तोड़ेगा, तत्काल दंड मिलेगा। जैसे ही मन में विकार जगायेगा, तुरंत व्याकुल हो जायेगा, देर नहीं लगेगी। पुरानी भाषा में इन्हे सहजात कहा। सहज है यानी इनका एक साथ जन्म होता है। हमारे विकारों का ओर दुखो का एक साथ जन्म होता है। विकार जगया कि व्याकुल हुआ। क्रोध भी जगायें और भीतर बहुत सुख शान्ति का अनुभव करने की कोशिश भी करे, यह होने वाली बात नहीं है। ये दोनों साथ नहीं रहते। विकार जगते ही व्याकुल हो जायेगा क्योंकि यह कुदरत का नियम है। जो नियम तोड़ेगा उसे दंड भोगना ही पड़ेगा। वह अपने को इस नाम से पुकारे या उस नाम से। प्रकृति इस बात को नहीं देखती कि नियम तोड़ने वाला व्यक्ति अपने आप को किस नाम से पुकार रहा है—अपने को हिन्दू, बौद्ध या जैन कहता है; ब्राह्मण, क्षत्रिय या शूद्र कहता है अथवा शैव या वैष्णव कहता है। कुदरत इस बात का जरा भी ख्याल नहीं करती कि नियमों को तोड़ने वाला व्यक्ति भारतीय है या अमरीकन, जपानी है या चीनी; तत्काल दंड देती ही है। प्रकृति का यह नियम है, यही धर्म है।

ऐसे ही चित्त को विकारों से शून्य कर लें यानी उसके विकार दूर कर दें तो विकार-विहीन निर्मल चित्त का अपना स्वभाव है, वह अनंत मैत्री से भर उठता है, अनंत करुणा से भर उठता है, अनंत मुदिता से भर उठता है, अनंत उपेक्षाभाव यानी समता से भर उठता है। यह उसका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है। यह नियम है, यह ऋत है। और जैसी ही मैत्री जागी या करुणा जागी या सद्बुभावना जागी, प्रकृति तुरंत पुरस्कार देना शुरू कर देती है। भीतर बड़ी शान्ति अनुभव होती है, बड़ा सुख अनुभव होता है। अब कोई अपने आप को हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, ब्राह्मण, शूद्र, अमरीकन या रूसी कुछ भी कहे, कोई अंतर नहीं पड़ता। पुरस्कार मिलना शुरू हो जाता है। जरा चित्त को निर्मल करके उसमें मैत्री जगाये तो सही करुणा जगाये तो सही सद्बुभावना जगायें तो सही तत्काल शुभ परिणाम आना शुरू हो ही जाता है। देर नहीं लगती। जैसे दंड मिलने में देर नहीं लगती, वैसे ही पुरस्कार मिलने में देर नहीं लगती। प्राचीन भारत में इसी को धर्म कहते थे।

“धर्म” शब्द का इतिहास

“धर्म” शब्द का बड़ा रोचक और मनोरंजक इतिहास है जो हम भूल बैठे। ढाई हजार वर्ष पूर्व के भारत में दो शब्द प्रयुक्त होते थे— कुशल-धर्म, अकुशलधर्म। इनको ही कहते थे—पुण्य धर्म, पाप धर्म। आज तो सुनने वाला कहेगा यह कैसी बात है? पुण्य-धर्म तो समझ में आता है, पर पाप-धर्म क्या हुआ? लेकिन इतिहास बनाता है कि इन शब्दों का प्रयोग पहले कैसे होता था। हमने अपने चित्त पर ऐसी वृत्तियां धारण कीं जिनसे हमारा कुशल होता है, तो वह कुशल धर्म कहलाया। इन वृत्तियों का स्वभाव ऐसा है कि वे हमारा कुशल ही करेगीं। हमने ऐसी वृत्तियां धारण कीं जो हमारा अकुशल करेंगीं क्योंकि उनका

स्वभाव ही ऐसा है, तो वह अकुशल-धर्म कहलाया। ऐसी वृत्तिया धारण की जो पुण्य वाली है, चित्त को पुनीत करने वाली है, तो वह पुण्य-धर्म कहलाया। ऐसी वृत्तियां धारण कि जो हमें व्याकुल बनाने वाली है, चित्त को क्लुषित करने वाली है, वह पाप-धर्म कहलाया। पुण्य-धर्म, कुशल-धर्म , अकुशलधर्म, ये शब्द भारत के पुराने साहित्य में बहुत बार आते हैं। आगे चल कर दो शब्द और आने लगे-कृष्ण-धर्म, शुक्ल-धर्म चित्त की वे वृत्तिया जो हमारे मानस को काला कर दें वह कृष्ण-धर्म कहलाई। चित्त की वह वृत्तिया जो हमारे मानस को उज्ज्वल कर दे शुक्ल-धर्म कहलायी। ऐसे ही दो शब्द और चले आर्य-धर्म, अनार्य-धर्म। चित्त की वे वृत्तियां जो मनुष्य को आर्य बना दे वे आर्य धर्म कहलाती है जो वृत्तिया अनार्य बना दे अनार्य धर्म कहलाती है।

ढाई हजार वर्षों में भाषा बदल जाती है, भाषा के शब्द बदल जाते हैं, शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। आज तो आर्य शब्द का अर्थ रूढ़ होकर एक जाति विशेष के लिए प्रयोग होने लगा है। जिसकी बहुत बड़ी नाक हो, बड़ी आंख हो, लम्बी नाक हो, गौरा चिठा रंग हो, जो ऊंचे कद का हो तो वह आर्य जाति का व्यक्ति है। कोई काले रंग का हो, उसके मोठे होट हो, घुघराले बाल हो तो हब्शी जाति का है। कोई पीले रंग का हो उसकी चुधिआई आखे हो , चपटी नाक हो तो वह मंगोलियन जाति का है। इस प्रकार जाति विशेष के लिए आर्य शब्द का प्रयोग होन लगा। भारत के पुराने साहित्य में आर्य शब्द का यह अर्थ बिल्कुल नहीं था। आर्य यानी वह व्यक्ति जो अपने चीत के विकारों को दूर करते करते संत हो गया हो, सज्जन हो गया हो, भला आदमी हो गया। अब उसमें बुराई नहीं हो सकती, ऐसा व्यक्ति आर्य हो गया। जो बुराई के रास्ते पड़ा है वह अनार्य है। “हीनो, गम्मो, पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो”-अनार्य वह जो हीन है, गवार है, धर्म से प्रथक हो गया हो। अपना भी अनर्थ करता है, औरों का भी अनर्थ करता है। भारत की पुरातन भाषा में ऐसे व्यक्ति को अनार्य कहते थे। जो अपना भी कल्याण करता है, औरों का भी कल्याण करता है, धर्म के रास्ते पर चलता है, वह आर्य कहलाता था। यों ये दो शब्द आर्य धर्म अनार्य धर्म ।

एक और शब्द हम देखते हैं जिसका पुरातन भाषा में बहुत प्रयोग हुआ-सनातन धर्म। दुर्भाग्य से अब इस शब्द की भी दुर्दशा हो गयी। अब सनातन धर्म किसी एक संप्रदाय को कहने लगे: यह आर्य-समाजी है, यह सनातनी है। सनातनी-धर्म या आर्यसमाजी -धर्म का धर्म से कोई लेना देना नहीं होता। धर्म हमेशा सनातन होता है, कुदरत का कानून सदैव वैसा का वैसा बना रहता है। आज से हजारों लाखों वर्ष पहले भी कोई आदमी अपने मन में क्रोध जगाता था उसको वैसे ही दंड मिलता था, वह वैसे ही व्याकुल होता था जैसे आज क्रोध जगाकर व्याकुल होता है। हजारों लाखों वर्ष के बाद भी क्रोध जगाकर वैसे ही व्याकुल होगा। आज के हजारों लाखों वर्ष पहले कोई व्यक्ति मैत्री , करुणा, सद्धभावना, जगाकर बड़ी सुख-शान्ति अनुभव करता था, आज भी करता है, हजारों लाखों वर्ष बाद भी करेगा। ये नियम अटूट हैं, सदा रहने वाला है। संसार में सब कुछ बदलता है लेकिन प्रकृति के नियम

नहीं बदलते । इस अर्थ में कहा सनातन धर्म - “एस धम्मो सनन्तनो”। धर्म हमेशा सनातन होता है।

समय बीतता गया तो कर्तव्य के अर्थ में भी धर्म का प्रयोग होना शुरू हो गया। चित्त को निर्मल रखना मेरा धर्म है, उसको सदगुणों से भरना मेरा धर्म है, यह मेरा कर्तव्य है, यह मेरा धर्म है। समाज में जो दुखियारे हैं उनकी सेवा करना धर्म है, यह मेरा धर्म है, यह मेरा कर्तव्य है। “धर्म” शब्द का कर्तव्य में प्रयोग होने लगा। समय बीतता गया, धीरे-धीरे जिसे पाप-धर्म कहते थे, कृष्ण-धर्म कहते थे, अनार्य-धर्म कहते थे, वह कहना बंद हो गया। अब जो-जो अच्छी बातें हैं, जो-जो कुशल हैं, वे ही धर्म कहलाये, शेष जो अकुशल हैं वे पाप कहलाये। इस प्रकार धर्म और पाप जैसे शब्दों का प्रयोग होना शुरू हो गया। यह इसका एक इतिहास है जिससे हम समझ सकते हैं कि धर्म शब्द का कैसे उदम हुआ और समय-समय पर उसका कैसे प्रयोग हुआ।

धर्म और संप्रदाय

आज दुर्भाग्य यह हो गया कि धर्म शब्द संप्रदाय का पर्यायवाची हो गया। देश के लिए यह बहुत बड़ी खतरनाक बात हुई। आज से दो हजार कोई व्यक्ति धर्म को हिन्दू धर्म नहीं कहता था, बौद्ध धर्म नहीं कहता था, जैन धर्म नहीं कहता था। प्राचीन भारत की भाषा में ये शब्द ही नहीं थे। परन्तु आज संप्रदाय और धर्म पर्यायवाची हो गये हैं।

जब देश आजाद हुआ तो देश का संविधान बना। समझदार लोगो ने इसे बनाया। उनका कोई दोष नहीं। लेकिन क्योंकि सदियों से अपने यहां धर्म और संप्रदाय पर्यायवाची हो गये , इसलिए एक बड़ी भ्रंति हुई, भूल हुई। यह निश्चय किया गया कि हमारी सरकार ‘सेक्युलर’ सरकार होगी। अंग्रजी भाषा में ‘सेक्युलर’ कहा, वहां तक तो ठीक। परन्तु हिन्दी में धर्म-निरपेक्ष शब्द चल पड़ा ,यह भूल हुई। राज्य धर्म-निरपेक्ष कैसे होगा, वह किसी संप्रदाय का पक्षपात करेगा। अच्छा राज्य किसी संप्रदाय का पक्षपात नहीं करता, परन्तु धर्म-सापेक्ष तो होगा ही;धर्म-निरपेक्ष कैसे होगा? कहना यह चाहते थे कि राज्य संप्रदाय-निरपेक्ष होगा, वह किसी संप्रदाय का पक्षपात नहीं करेगा। देश की दंड -संहिता है-कोई व्यभिचार करेगा उसे दंड मिलेगा ,कोई चोरी करेगा उसे दंड मिलेगा, जो हत्या करेगा उसे दंड मिलेगा, कोई झूठ बोलकर किसी को छोगे उसे दंड मिलेगा, कोई नशा-पता करके समाज की व्यवस्था दूषित करेगा उसे दंड मिलेगा। यही तो धर्म है। मन को मैला कर के शरीर और वाणी से दुष्कर्म ही अधर्म है। जिसने धर्म को तोड़ा , धर्म के नियमों को तोड़ा , उसे दंड मिलना चाहिए। इसलिए राज्य धर्म-सापेक्ष ही है, धर्म -निरपेक्ष नहीं है।

राज्य को धर्म-निरपेक्ष कह कर हमने अपनी शिक्षा -शालाओं में ,पाठशालाओं में धर्म का पठन-पाठन बंद कर दिया, यह बड़े दुर्भाग्य की बात हुई। जीवन में धर्म उतरना ही चाहिए;हिन्दू-धर्म नहीं, जैन धर्म या बौद्ध-धर्म नहीं। हिन्दू-धर्म तो केवल हिन्दुओं को हो कर रह जायेगा,जैन-धर्म केवल जैनियों का, बौद्ध-धर्म केवल बौद्धों का, सिक्ख-धर्म केवल

सिक्खो का हो कर रह जायेगा। परंतु धर्म तो सब पर एक जैसा लागू होता है। आग तो सिर्फ आग होती है जो जलती है, जलाती है। क्या हिंदुओं की आग का ताप एक प्रकार का होता है, मुसलमानों की आग का ताप दूसरे प्रकार का होता है? नहीं न? तो कंहा उलझ गये? धर्म की इतनी सीधी सी बात ली! सूरज का धर्म है, स्वभाव है; ताप देना, रोशनी देना। चंद्रमा का स्वभाव है, धर्म है; रोशनी देना, शीतलता देना। वे न तो हिंदुओं का पक्षपात करते हैं, न मुसलमानों का, न जैनियों का, न सिक्खो का; उनका इन संप्रदायों से कोई लेन देन नहीं। इसी प्रकार धर्म भी सार्वजनिक होता है, सार्वदेशिक होता है, सार्वदेशिक होता है, सार्वकालिक होता है, सनातन होता है।

संसार में कोई महापुरुष जन्मता है तो दुखियारे लोगो में धर्म बांटने के लिए जन्मता है- 'धर्मसंस्थापनार्थाय'-धर्म स्थापित करने वाला है तो समझना चाहिए वह महापुरुष नहीं है। वह स्वयं उलझा हुआ है, भटका हुआ है, लोगो को भी भटकाने का काम कर रहा है। महापुरुष होगा तो सार्वजनीन धर्म का ही उपदेश देगा-ऐसा करोगे तो यह दंड मिलेगा, यह पुरस्कार मिलेगा। चित्त को विकारों से विकृत करोगे तो व्याकुलता ही मिलेगी और चित्त को व्याकुलता से मुक्त कर लोगे तो सही सुख शान्ति मिलेगी। महापुरुष होगा तो यही सच्चाई ज्ञापित करेगा, लोगो को समझायेगा। लेकिन हम उसके द्वारा सिखाये गये धर्म को धारण करना भूल जाय, जो शिक्षा दी गयी उसका पालन करना भूल जाये, तो दोष हमारा है।

बहुत घना अंधकार हो, बियाबान निर्जल जंगल हो, रात का समय हो, तो यह बड़ी भयावह स्थिति है। चारों ओर जंगली जानवरों का डर है। कोई कैसे इस जंगल से बाहर जाये? एक दयावान व्यक्ति आए और हाथ में एक मशाल पकड़ा दे -एक डंडा जिस पर कपड़ा लपेटा है, उस पर तेल लगाया है, आग जलाई है। वह मशाल हाथ में दे कर कहे कि इसके सहारे सहारे जंगल के बाहर निकल जा, अपने संकट के बाहर निकल जायेगा। बड़े प्यार से, बड़ी करुणा से उसने मशाल हाथ में पकड़ाई। जिस डंडे पर मशाल लगी हुई थी वह डंडा हमें प्यारा लगने लगा। उस डंडे को छाती से लगा लिया। मशाल कब की बुझ गयी, ज्योति कब की चली गयी पर उस डंडे से प्यार हो गया; यह डंडा हमारे महापुरुष ने दिया था। एक कहता है- हमारे महापुरुष ने जो डंडा दिया वह बहुत मोटा है, तेरे महापुरुष ने जो दिया वह छोटा है। मेरा डंडा ऐसा, तेरा डंडा वैसा। सबके हाथों में केवल डंडे रह गये, रोशनी कहीं नहीं रही। जो धर्म दिया वह कहीं चला गया और इन डंडों के रूप में संप्रदाय हाथ में रह गये, जो केवल लड़ने के काम आते हैं किसी और काम नहीं। सभी संप्रदाय धर्म-विरोधी हैं। धर्म और संप्रदाय का कभी मेल-जोल नहीं होता, दोनो एक दूसरे के शत्रु हैं। जैसे-जैसे धर्म प्रकाश में आयेगा वैसे-वैसे संप्रदाय विलीन होता चला जायेगा। संप्रदाय प्रकाश में आयेगा तो धर्म विलीन होता चला जायेगा। दोनो साथ नहीं चल सकते और दुर्भाग्य से हमने संप्रदाय को प्रमुखता दे दी।

एक आदमी बहुत प्यासा है, प्यास के मारे व्याकुल है। कोई महापुरुष आता है, उसे पीने के लिए अमृत देता है और कहता है इससे तेरी प्यास बुझ जायेगी, तुझे बड़ा सुख मिलेगा, बड़ी शान्ति मिलेगी। महापुरुषों ने पीने के लिए किसी पात्र में अमृत दिया। हमने अमृत की एक बूंद भी नहीं पी, पर उस पात्र के साथ चिपकाव सा पैदा कर लिया। मेरा पात्र ऐसा है। यह मेरे महापुरुष ने दिया है। तेरे महापुरुष ने पात्र लोहे का दिया या तांबे का या सोने का दिया; सब पात्र रीते के हो गये, सब खाली हो गये। सब के पात्रों में सूराख हो गये। सारा अमृत बह गया। हम खाली पात्र छाती से लगाये हुए हैं। सोने का पात्र भी क्या काम आया? महापुरुषों ने उसमें अमृत दिया था, वह अमृत कंहा गया? एक बूंद भी पी कर नहीं देखी और पात्रों के साथ उलझे हुए हैं। ये सब संप्रदाय ही संप्रदाय हैं, उनमें धर्म का नामोनिशान तक नहीं।

यह वेश बना लिया, यह कर्मकाण्ड कर लिया, ऐसी दार्शनिक मान्यता मान ली या वैसी दार्शनिक मान्यता मान ली-ये विभिन्नताएं संप्रदाय के ही लक्षण हैं। संप्रदाय हमेशा भिन्न-भिन्न होता है, धर्म सदा एक होता है। धर्म में भिन्नता नहीं होती, वह सब के लिए एक जैसा होता है। यह बात ऋत कहलाती है। जिन्हे हम ऋत कहते हैं, मुनि कहते हैं, वे सब हमारे देश के वैज्ञानिक थे। ऋत वह होता है जो ऋत की ऐषणा करता है, ऋत की गवेषणा करता है, पर्यवेषणा करता है, खोज करता है, अपने भीतर की अनुभूतियों के बल पर जानता है कि ऋत क्या है। अपने भीतर ऋतभरा प्रज्ञा जगाता है- ऐसी प्रज्ञा जो अनुभूति से बता दे कि यह ऋत है, ऐसा ऐसा होगा तो यह परिणाम आयेगा ही। यदि हमें यह परिणाम अच्छा नहीं लगता तो ऐसा-ऐसा न हाने दे।

आग पर हाथ रखेंगे तो हाथ जलेगा ही। हम अपने आप को ऐसी दार्शनिक मान्यता मानने वाला कहें या वैसी दार्शनिक मान्यता मानने वाला, इस वेष भूषा वाला कहें या उस वेश भूषा वाला, आग पर हाथ रख लिया तो जलेगा ही विकार पर हाथ रख लिया तो जलेगा ही। स्वयं भी जैसे अग्नि का स्वभाव है जलना या जलाना, वैसे ही जैसे पहले जागा वैसे ही हमें पहले जलाना शुरू करेगा, हमें व्याकुल करना शुरू कर देगा और फिर दूसरों को भी व्याकुल कर देगा। जैसे अग्नि जिस पात्र में हो, पहले उस पात्र को जलाएगी, संतप्त कर देगी। जो भी उस वातावरण के संपर्क में आयेगा वही संतप्त हो जायेगा। इसी प्रकार जब मैंने क्रोध जगाया तो उसका पहला शिकार मैं हुआ। दूसरों की हानि तो तब होगी या हो सकता है न भी हो, पर मेरी हानि तत्काल होने लगी। मैंने जैसे ही क्रोध जगाया वैसे ही मैं व्याकुल हुआ। अब यह व्याकुलता फैलनी शुरू हुई। मैंने व्याकुलता बाटनी शुरू की, मैंने अपने भीतर का संताप बाटना शुरू किया, दूसरों को व्याकुल बनाना शुरू कर दिया।

कुदरत के बंधे-बंधाए नियम हैं। बर्फ को जिस पात्र में रखेंगे वह पहले उस पात्र को शीतल करेगी और फिर आस-पास के वातावरण को शीतल कर देगी। यदि मैं अपने भीतर निर्मलता जगाऊंगा, तो पहले अपने भीतर सुख शान्ति महसूस करूंगा और फिर वह सुख

शान्ति बाहर फैलनी शुरू हो जाएगी, बाहर का बातावरण सुख शान्ति से भर जाएगा। मेरे संपर्क में जो आयेगा, उसे भी सुख शान्ति मिलनी शुरू हो जायेगी। धर्म की कितनी सीधी सरल बात है। मन में विकार जगाना अधर्म है। मन को विकार-विहीन करना धर्म है। इसे भुला कर और संप्रदाय को धर्म मान कर हम कहां उलझ गये।

अपने धर्म को बचाना है इसलिए उसके धर्म को नुकसान पहुंचाओ, उसके धर्म को नष्ट करें। अपने मंदिर को बचाना है इसलिए उस मंदिर को ताड़ दें। अपने गुरुद्वारे को बचाना है इसलिये उस गिरताघर में आग लगा दो। समझे ही नहीं, क्या करने लगे, किसको धर्म कहे जा रहे हैं। मन में जैसे ही क्रोध जगाया व किसी अन्य की हानि करने की सोची कि हमारा धर्म तो वही खतरे में पड़ गया। अब कहते हैं मेरा धर्म खतरे में है, मुझको मेरा धर्म बचाना है इसलिए दूसरे के धर्म पर धाबा बोलता हूं, आक्रमण करता हूं। यह भूल गये कि हमारा अपना धर्म कितने खतरे में है! विकारों से भरे हैं; जब देखो तब विकार जगाये जा रहे हैं, व्याकुल हुए जा रहे हैं। संप्रदाय को धर्म मान लिया और वास्तविक धर्म अधरे में चला गया, इसलिए यह होश नहीं है कि कितना बड़ा खतरा माल ले लिया है।

धर्म धारण

धर्म क्या होता है इसे ही भूल गये, धारण करना तो बहुत दूर की बात हुई। कोई व्यक्ति बुद्धि के स्तर पर यह स्वीकार कर भी ले कि मन में विकार का जागना और धर्म को नष्ट करना है;— यह बात समझ में आ गयी, इसे स्वीकार भी कर लिया, लेकिन धर्म धारण कैसे करे? देश ने विद्या ही खो दी, साधन ही खो दिया। इसलिए समझें कि धर्म धारण कैसे करें।

एक बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जब तक धर्म धारण करने का अभ्यास नहीं करेंगे तब तक धर्म धारण नहीं होगा। अभ्यास प्रवचनों से नहीं होगा, जरा सा भी नहीं होगा। प्रवचन हो गया क्योंकि धर्म का खूब समझ गया तो धोखा हो गया। वस्तुतः धर्म के बारे में कुछ नहीं समझा।

किसी ने समझाया कि रसगुल्ला बहुत मीठा है। वह कहता है बहुत मीठा है क्योंकि उसने चखा है। हमने संदेह पैदा किया तो वह समझाता है कि उसमें शक्कर पड़ी है इसलिए मीठा है। अब समझ में आ गया, रसगुल्ला बड़ा मीठा है। पर हमारे लिए कंहा मीठा है? रसगुल्ले को अपनी जबान पर तो रखा ही नहीं जिस दिन अपनी जुबान पर रख लेंगे उस दिन कहेगे हा सचमुच मीठा है। जब रसगुल्ला धारण किया, तब कल्याण की बात हुई, अन्यथा कोरी बात ही बात थी। इसी प्रकार धर्म सचमुच धारण करना शुरू कर दें तभी कल्याण की बात होती है। हम संप्रदाय धारण किये जा रहे हैं। यह कर्मकाण्ड कर लिया या वह कर्मकाण्ड कर लिया, यह व्रत-उपवास कर लिया या वह तीज-त्योहार मना लिया, ऐसी

या वैसी दार्शनिक मान्यता मान ली; इनका धर्म से दूर-परे का भी संबन्ध नहीं, जरा भी संबन्ध नहीं। इनको धारण कर के हम अपने को धर्मवान मानने लगें तो हमें शांति कहां मिलेगी, कैसी मिलेगी? धर्म तो शांति देने वाला है, हमारे दुखों को दूर करने वाला है।

मेरा कोट खूंट्टी पर टंगा है और मैं ठंड के मारे ठिठुर रहा हूं। मैं कोट की बड़ी प्रशंसा करता हूं कि या कोट उनी है, बहुत अच्छा है, बहुत कीमती है, इसको पहनने से सारी सर्दी दूर हो जाती है। मैं ठिठुरे जा रहा हूं पर कोट पहनता नहीं तो मुझे कोट को लाभ कैसे होगा? बीमार आदमी औषधि की प्रशंसा किये जा रहा है पर औषधि का सेवन नहीं करता तो वह औषधि उसके किस काम की?

प्यासा आदमी पानी की प्रशंसा ही प्रशंसा किये जाय ,पानी की केवल चर्चा करे पर एक बूंद पिये नहीं तो वह पानी उसके किस काम का? उसकी प्यास कैसी बुझेगी? इसी तरह देश का दुर्भाग्य हुआ कि धर्म की चर्चा तो बहुत होती है, पर धर्म धारण करने की विद्यां लुप्त हो गयी।

धर्म कैसे धारण करें? धर्म-धारण का अर्थ है कि वह अनुभूति पर उतरें। जो सच्चाई मेरी अनुभूति पर उतरी, मेरे लिए वही सत्य है। जो सच्चाई किसी अन्य की अनुभूति पर उतरी वह उसके लिए सत्य है, मेरे लिए नहीं। किसी महापुरुष ने सच्चाई का व्याख्यान ऐसा है। उसने अनुभव किये इसलिए कहता है। पर जब तक हम स्वयं अनुभव नहीं कर ले,तब तक वह सच्चाई हमारे लिए सच्चाई नहीं दोखा है। हम कोरी कल्पना करेंगे तो कल्पनाओं से बात नहीं बनती। कभी भूल से हमने अंगारे पर हाथ रख दिया ,हमारा हाथ जल गया, यह अनुभूति हुई। दूसरी बार बड़े सजग रहेंगे कि कही अंगारे पर हाथ ने रख दे, क्योंकि अनुभव हो गया कि अंगारे पर हाथ रखने से हाथ जलता है। ऐसा अनुभव एक बार हो जाय , दो बार हो जाए , चार बार हो जाए ता आदमी बड़ा सजग रहता है, अब आग से दूर रहता है।

जिस दिन अनुभव होना शुरू हो जायेगा कि क्रोध जगाया और अंगारे की तरह जलने जगा, क्रोध जगाया और व्याकुल हो गया तो ऐसे स्वानुभाव से कल्याण होन लगेगा। अभी तो क्रोध जगने पर अपनी और देखता ही नहीं कि मेरे भीतर क्या होने लगा। देख भी नहीं सकता क्योंकि देखना आता ही नहीं।क्या देखे? क्रोध जागते ही जिस कारण से क्रोध अपमान किया , उसने ऐसा किया, वैसा किया । ये तो क्रोध के उपरी कारण है। वस्तुतः क्रोध मेरे भीतर है, इस सच्चाई को यथावत देखना है। मेरे भीतर इस समय क्रोध जागा है या द्वेष दुरभावना राग आशक्ति वासना भय अथवा अंहकार जागा है- जो विकार जागा है जिस दिन उस अमूर्त विकार को जैसा है वैसा देखना आ जायेगा, उस दिन यह भी देखना आ जायेगा कि विकार जागते ही कितना व्याकुल हुआ। अभी तो अपनी व्याकुलता देख नहीं

पाता इसलिए सोचता हुआ! अभी तो अपनी व्याकुलाता देख नहीं पाता इसलिए सोचता है कि उसने कह दिया, या घटना ऐसे घट गयी इसलिए व्याकुल हुआ। अभी तो बहिर्मुखी तो बहिर्मुखी है। बाहर के सारे आलंबन सिर सवार हो गये , अपने भीतर की सच्चाई देखना भूल गया।

सत्य दर्शन

अपने भीतर की सच्चाई देखने को ही भारत में पुरानी भाषा में विपश्यना कहते थे। पश्यना माने देखना- सामान्य आँखों से देखना। विपश्यना माने विशेष रूप से देखना। अपने भीतर की सच्चाई को विशेष रूप से यानी स्वानुभव से देखना। साधारणतः आदमी बाहर की सच्चाई को देखता है और व्याकुल होता है। वह इस बात को भूल जाता है कि क्रोध जगाकर व्याकुल हुआ है। उसके मन में यही बात व्याकुल हो जाती है कि दूसरे व्यक्ति ने गाली दी इसलिए मैं व्याकुल हुआ। बार-बार यही चिंतन करने लगता है। इससे बड़ी नादानी और क्या होगी? वह तो गाली देकर कब को चला गया। वह इस घटना को भूल भी गया होगा, परंतु मैं नहीं भूला। बार बार यही चिंतन कर रहा हूँ कि उसने मुझे गाली दी, उसने मेरा अपमान किया। मैंने अपने भीतर क्रोध की, द्वेष की, दुर्भावना की जो आग लगायी, उसको पेटेल दिये जा रह हूँ। बार बार उसको पेटेल देकर अपने आप को जला रहा हूँ। किसी दूसरे कि क्या हानि होगी। मेरी हानि हो रही है। सचमुच धर्मवान हो जाऊंगा तो हजारी गाली दे, मैं व्याकुल नहीं होऊंगा। यह बात प्रवचनों में समझ में नहीं आएगी। प्रवचन सुन कर या पुस्तक पढ़ कर बुद्धि-बिलास भले ही कर लूँ, अनुभूति पर बात कैसे उतरेगी?

अपने भीतर की सच्चाई को स्वयं देखना है। क्षण प्रतिक्षण भीतर जो घटना घट रही है, उसे देखेंगे। जो भी घट रही है उसे साक्षीभाव से देखेंगे, दुष्प्रभाव से देखेंगे, तटस्थभाव से देखेंगे- भोक्ताभाव से नहीं। भोक्ताभाव में जीने की पुरानी आदत पड़ गयी भोक्ताभाव से नहीं। भोक्ताभाव के बाहर निकलते चले जाएँ, द्रष्टाभाव बलवान होता चला जाएगा, साक्षीभाव बलवान होता चला चला जाएगा। हम धर्मवान होने लगेंगे, क्योंकि अपने भीतर की सच्चाई को देखने लगेंगे। इसी को पुरानी भाषा में सम्यक दर्शन भी कहते थे। सम्यक रूप से , सही रूप से सच्चाई का दर्शन करना है। सही रूप से दर्शन तब होता है जब भोक्ताभाव निकल जाए, केवल दुष्प्रभाव रहे, साक्षीभाव रहे, तटस्थभाव रहे। तब जो दर्शन होता है वह सम्यक दर्शन होता है। इसी को चाहें तो सत्य-दर्शन कहें या आत्म-दर्शन कहें या परमात्मा-दर्शन कहें।

“आत्म” क्या होता है? परमात्म क्या होता है? जो सत्य है वही ईश्वर है, परम सत्य ही परमेश्वर है; उसको देखना तो सीखे। अपने भीतर की सच्चाई को देखना सीखें तो सारा रहस्य खुलता चला जायेगा, प्रकृति के सारे नियम समझ में आते चले जाएंगे। जो सचमुच संत हुए, सचमुच ऋषि हुए उन्होंने यही किया। भारत का एक संत कहता है-

“ किव सचिआरा होईए, किव कुड़ै तुटै पालि।

हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि।।

भारत के इस महान संत ने भारत की भाषा को एक नया आयाम दिया। भारत की भाषा में दुखयारा शब्द खुब चलता था। दुखयारा वह जिसके पास सुख का नामोनिशान न हो। सुखयारा शब्द भी चलता था। सुखयारा वह जिसके पास दुख का नामोनिशान न हो। यह वाणी के सच या झूठ की बात नहीं, अपने भीतर सच का दर्शन करने की बात है। किव सचिआरा होईए- भीतर ऐसे सत्य खोज की यात्रा शुरू कर दें कि जो-जो सत्य जिस-जिस क्षण प्रकट हो रहा है बस उसी को स्वीकार करना है, कल्पना को नजदीक नहीं आने देना है। कोई व्यक्ति सुनि-सुनाई बात का या पढ़ी-पढ़ाई बात का ध्यान करने लगे तो समझ लेना चाहिए कि वह सचियारा नहीं है। जब हमने अनुभव नहीं किया, किसी और ने अनुभव और ने अनुभव किया, तब हम तो केवल कल्पना ही कर रहे हैं।

किसी महापुरुष ने बताया कि मुक्ति ऐसी होती है, चित्त की निर्मलता ऐसी होती है, धर्म ऐसा होता है। पर हमें तो अनुभव हुआ नहीं, हम कैसे जानेगे? कल्पना ही करेगे। कल्पनाओं का और सचिआरा होने का मेल नहीं बैठता। मानने और जानने में जमीन आसमान का अंतर होता है। बहुत बड़ा अंतर है। हमको तो जानना है। किव सचिआरा होईए, किव कुड़ै पालि - झूठ की जितनी पर्ते है सब दूर हो जाए, झूठ का नामोनिशान नहीं रहें। सचिआरा होगा तो क्या होगा? अपने भीतर सचिआरा हो जायेगा, सत्य का दर्शन करना शुरू कर देगा, सम्यक दर्शन करना शुरू कर देगा, विपश्यना करना शुरू कर देगा, विदर्शन शुरू कर देगा।

हुकमि रजाई- हमें संत ने एक और कितना अच्छा शब्द दिया। प्रकृति का निसर्ग क्या हुक्म है, उसकी क्या रजा है? या यों कहें परमात्मा का क्या हुक्म है, उसकी क्या आज्ञा है, वह क्या चाहता है? प्रकृति हमसे क्या चाहती है? प्रकृति चाहती है कि अपने मन को मैला मत करो, जैसे ही मैला करोगे में दण्ड दूगी। प्रकृति चाहती है कि मन को निर्मल रखो, जैसे ही निर्मल करोगे में तुरन्त पुरुस्कार दूगी। यह प्रकृति चाहती है, क्या खुदा चाहता है- चाहे जैसे कहें लेकिन यही प्रकृति का नियम है, यही हुक्म रजाई है।

हुकमि रजाई चलणा - जब कुदरत के कानून के अनुसार चलना आ गया, कुदरत के अनुसार अपना जीवन ढलने लगा, तो सुखी हो गया और कुदरत के कानून को तोड़ कर जीने लगा तो दुखी हो गया। अपने को इस नाम से पुकारे या उस नाम से पुकारे ,कोई अंतर नहीं पढ़ता, धर्म सब पर एक जैसा लागू होता है। हम कुदरत का कानून नहीं तोड़े।

कुदरत का यह कानून कंहा मिलेगा? नानक लिखिया नालि-- अपने साथ लिखा हुआ है, अपने अंदर लिख हुआ है। यह पुस्तको में नहीं मिलेगा, किसी गुरु वाणी में नहीं मिलेगा,किसी बुद्धि-बिलास में नहीं मिलेगा। वहां खोजेगे तो सारा जीवन धोखे मे चला जायेगा। भीतर अनुभव करना शुरू कर देंगे, तो देखेगे कि सचमुच भीतर ही तो सारा लिखा हुआ है। कुदरत के कानून को जो विधान है वह हमारे भीतर अनुभूति पर उतरने लगा, तो कल्याण हो गया। फिर अन्य सारी बाते निक्कमी लगने लगेगी। हिंदू अपने को हिन्दू कहता रहेगा, मुसलमान अपने को मुसलमान कहता रहेगा, जैन अपने को जैन कहता रहेगा, ईसाई अपने को ईसाई कहता रहेगा- लेकिन धार्मिक बनना शुरू हो जायेगा। नाम बदलने की जरूरत नहीं है। हिन्दू जब धार्मिक होगा तो अच्छा हिन्दू बन जायेगा, बौद्ध अच्छा बौद्ध बन जायेगा, जैन अच्छा जैन बन जायेगा, ईसाई अच्छा ईसाई बन जायेगा; अच्छा इंसान बन जायेगा, नेक इंसान बन जायेगा, अच्छा आदमी बन जायेगा। धार्मिक व्यक्ति होगा तो अपन मंगल करेगा, सब का मंगल करेगा; अपना कल्याण करेगा, सब का कल्याण करेगा।

कर्मकाण्ड

स्वयं की अनुभूति पर उतरा हुआ धर्म यही करेगा। फिर ऊपरी-ऊपरी कर्मकाण्ड करते हुए लगेगा कि सब बेकार है। हमें तो धर्म धारण करना है। धर्म धारण करना ही काम की बात है,ऊपर-ऊपर की वेश-भूषा चाहे जैसी हो, उनमें क्या रखा है।ऐसा खूब समझमें आने लगेगा क्योंकि धर्म अनुभव पर उतरने लगा है। खूब समझने लगेगा कि मैं चोटी रखता हूं तों और विकार जगाता हू तो भी इतना डण्ड मिलेगा। चोटी या दाढ़ी रखने से , केश बढ़ाने या सिर मुडवाने से धर्म क्या लेन देन? ये वेश-भूषाए अपनी जगह है, इनमे कोई दोष भी नहीं है। यह सब जब चले थे तो बहुत ही अच्छे रूप में चले थे। अधिकांश कर्मकाण्डों के इतिहास में जायें, उनका अनुसंधान करके देखे तो पता चलेगा कि बहुत से कर्मकाण्ड और मान्यताएं बड़े शुद्ध रूप से चली थी, लेकिन बिगड़ते-बिगड़ते आज कैसा रूप धारण कर लिया।

गंगा जब गंगोत्री से निकलती है तब कितनी निर्मल होती है, कितनी पादर्शी होती है। उसका जल कितना निर्मल होता है। एक चुल्लू पानी पीते है तो मन तृप्त हो जाता है, काया तृप्त हो जाती है। हिमालय की वह गंगा नीचे उतरते-उतरते जब मैदान पर आ गिरी तब उसमें इधर उधर के नालों की गंदगिया आ कर मिलती गयी और निर्मल गंगा गंदी

होती चली गयी। गंगासागर तक पहुँची, तब तक बहुत गंदी हो गयी। कहते हैं कि गंगा में डुबकी लगाओ तो सारा का सारा मैल जायेगा। लेकिन कलकत्ते की गंगा को देखो। कोई सफ़ेद कपड़ा लेकर उसमें धोए तो वह भी मैला हो जाये। मैल कैसे धुल जायेगा? गंगोत्री का पानी अब भी साथ है। हिमालय का वही पवित्र, निर्मल पानी अब भी इस गंगा के साथ चला आ रहा है, लेकिन उस पर कितना मैल चढ़ गया! इसी प्रकार कर्मकाण्डो को ध्यान से देखेंगे तो पायेंगे कि आरम्भ तो बहुत अच्छा हुआ होगा लेकिन बिगड़ते बिगड़ते क्या रूप धारण कर लिया। धर्म की भी यही हालत हुई। आरंभ तो निर्मलता के साथ हुआ और आज हमने उसे संप्रदायों में बाट दिया।

एक आदमी चोटी रखता है और बड़ा गर्व करता है कि मैं चोटी रखत हूँ। ऐसे बहुत से लोग हैं जो चोटी रखते हैं और कहते हैं कि मैं कट्टर हिन्दू हूँ; मैं कट्टर मुसलमान हूँ, मैं दाढ़ी रखता हूँ ; मैं कट्टर सिख हूँ, मेने कैश बड़ा रखे हैं; मैं कट्टर बौद्ध हूँ मैंने सिर मुड़ां रखा है। कट्टर सिख, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान तो बहुत मिले , पर कट्टर धार्मिक व्यक्ति एक भी नहीं मिला। एक भी व्यक्ति यह कहने वाला नहीं मिला कि मैं कट्टर धार्मिक हूँ; मुझे धर्म का जीवन जीना है या मैं धार्मिक बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यह देश के लिए के बड़ी दुर्भाग्य की बात हुई कि संप्रदाय और धर्म दोनो एक दूसरे से ऐसे घुल मिल गये जैसे गंगात्री का जल गंगासागर तक पहुँचते-पहुँचते इतना मैला हो गया कि शुद्ध जल अब देखने को ही नहीं मिलता। धर्म कहां चला गया? पवित्रता कहां चली गयी? निर्मलता कहां चली गयी? इन सारी वेश-भूषाओं , कर्मकाण्डो , दार्शनिक मान्यताओं ,संप्रदायिक जंजालो और जात-पांत को ले कर धर्म की पवित्रता समाप्त हो गयी। हमने अपने धर्म की निर्मलता खो दी , शुद्धता खो दी।

धर्म वह होना चाहिए जो धर्म संगत हो, जो बुद्धि संगत हो, जो युक्ति संगत हो। जो बुद्धि संगत नहीं है, जो बुद्धि को ही ठीक नहीं लगता, तर्क संगत नहीं है, बिल्कुल बेतुकी बात हो, उसको धर्म कैसे मान ले? तो पहले यह समझना जरूरी है कि बात तर्क संगत है, युक्ति संगत है, बुद्धि संगत है। फिर उसको आजमा कर देखना चाहिए। आगे हम यह जांचेंगे कि क्या धर्म सचमुच युक्ति संगत है, बुद्धि संगत है, तर्क संगत है और क्या सचमुच कल्याणकारी है? फिर उसे अनुभव कर के देखेंगे। धर्म और संप्रदाय के भेद को समझेंगे और फिर धर्म कैसे पालन करें, इस पर चर्चा करेंगे।

सब के अंदर धर्म का बीज है। लेकिन यह धर्म का बीज, बीज ही बना रह गया, विकसित नहीं हुआ, फूला-फला नहीं, तो हमें बीज का क्या लाभ मिला? सब के अंदर जो यह धर्म का बीज है, उसे बिकसित करना है, उसे फूलना-फलना है। आगे इस पर विचार करेंगे।

2. शील : धर्म का पहला चरण

यह बात पहले ही समझ लेनी चाहिए कि धर्म और संप्रदाय दो अलग-अलग रास्ते हैं। जो व्यक्ति जितना धर्मवान होता चला जाएगा वह उतना ही संप्रदायवाद से दूर होता चला जायेगा और जो व्यक्ति जितना संप्रदाये होता चला जायेगा वह उतना ही धर्म से दूर होता चला जायेगा। दानो का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता।

हमारे देश के ऋषियो ,मुनियो, सद्गुरुओ, सत्पुरुषों, महापुरुषों,बुद्धो, और अरिहंतो ने इस सच्चाई का अनुसंधान किया । जंहा देखो संसार के सारे प्राणी दुखी है। क्यो दुखी है? क्या इन दुखो से निकलने का कोई रास्ता है? हमारे महापुरुषों ने यह खोज बाहर नहीं अपने भीतर शुरु की, क्योकि भीतर से ही मनुष्य दुखी होता है। उसे लगता है कि मेरे दुख का कारण बाहर है।बाहर ऐसी घटना घठी बाहर किसी न कहा इसलिए में दुखी हू। कितु यह केवल भ्रम है- ऐसा लगता है, ऐसा अभासित होता है। अंदर जाकर सच्चाई देखेगे तो स्पष्ट मालूम होगा कि मेरे सारे दुखो का कारण मेरे भीतर ही है बाहर नहीं मै जब जब अपने मन में बिकार जगाता हू तब तब दुखी हो जाता हू। बाहर की घटना चाहे जैसी हो मै भीतर बिकार नहीं जगाता तो दुखी नहीं होता और बाहर की घटना मुझे व्याकुल नहीं बना सकती।ऐसे में अपनी समता नहीं खोता शान्ति नहीं खोता,संतुलन नहीं खोता।जो करना उचित है वह सब कुछ करता हू, आवश्यक होने पर बलपूर्वक भी करता हू, पर शान्ति के साथ भी करता हू; मन की समता और संतुलन खोए वगैर भी करता हू।

ऐसा व्यक्ति धर्म सीख जाता है। वह धर्म का जीवन जीने लगता है। एक व्यक्ति अपने को हिन्दू कहने मात्र से धार्मिक कैसे हो गया? मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, यहूदी या पारसी कहने मात्र से धार्मिक कैसे हो गया? अपने को हिन्दू कहने वाले व्यक्ति मे से कोई धार्मिक भी हो सकता है, कोई बिल्कुल अधार्मिक भी। इसी प्रकार अपने को बौद्ध जैन ईसाई या सिख मुसलमान कहने वाला व्यक्ति- धार्मिक भी हो सकता है और अधार्मिक भी।

धार्मिक वह है जो कुदरत के नियमों के अनुसार अपने आप को ढाल लेता है। अधार्मिक वह है जो कुदरत के नियमों को तोड़ कर अपना आप को दुखी बना लेता है तथा औरो को भी दुखी बना लेता है। यह धर्म की पुरानी परिभाषा है।

धर्म से सुरक्षा

अपने देश के जो ऋषि मुनि हुए वे सारे के सारे वैज्ञानिक ही हुए। उन्होंने सत्य का अनुसंधान किया। उन्होंने प्रकृति के नियमों का अनुसंधान किया इसलिए ऋषि कहलाये। यह अनुसंधान केवल बुद्धि के स्तर पर नहीं होता और न ही पुस्तके पढ़ कर होता है। यह अनुसंधान अनुभूतियों के स्तर पर होता है। भीतर देखते हैं तो मालूम होता है कि जब भीतर बिकार जगाता हू तब मैं अपनी समता खो देता हू और व्याकुल हो जाता हू। जब भीतर बिकार नहीं जगाता तो मैं अपनी समता बनाय रखता हू और दुखों से दूर रहता हू। यह कुदरत का नियम है यही धर्म है। जैसे अग्नि का जीवन है जलना और जलाना। यह धर्म न हिन्दू है न ईसाई और न बौद्ध । यह अग्नि धर्म है स्वभाव है, प्रकृति है लक्षण है। इसी प्रकार हमारे मन में जो बिकार जागते हैं उनका स्वभाव है कि जब वह जागेगे तो हमें व्याकुल बना ही देगे, हमारी समता को नष्ट कर ही देगे, हमारे मन के संतुलन को नष्ट कर ही देगे, हमें दुखी बना ही देगे। हर विकार का स्वभाव है दुखी बनाना और न केवल स्वयं को दुखी बनाना , बल्कि ओरो के लिए के भी दुख को निर्माण करना तथा सारे बातावरण को दुखी बना देना।

यह बात जिसकी समझ में जितनी जल्दी आती है और अपने आप को कुदरत के इस नियम के अनुसार जितनी जल्दी ढालने लगता है वह सही मायने में उतना धार्मिक होजाता है। सही मायने में सुखी हो जाता है। अब वह अपने आप को हिन्दू कहे या बौद्ध जैन कहे या सिख ईसाई कहे कोई अंतर नहीं पड़ता । वह व्यक्ति धार्मिक हो गया , क्योंकि अपना मन मैला करने पर कुदरत डंड देती है। मरने के बात भी बात अपने जगह हैं। लेकिन दंड अभी मिलना शुरू हो जाता है। इसके विपरीत यदि मैं अपने मन को विकारों से दूर रखता हू और मेत्री करुणा सदभावना जगाता हू तो कुदरत मुझे पुरस्कार देती है; तत्काल पुरस्कार देने लगती है। मुझे बहुत शान्ति अनुभव होने लगती है, बहुत सुख अनुभव होता है। यह कुदरत का नियम है, यह उसका स्वभाव है। जैसे विकारों का स्वभाव है हमें व्याकुल कर देना, वैसे विकार मुक्त चित्त का स्वभाव है हमें शान्ति देना, आंतरिक सुख देना।

अपने को विकार-विमुक्त करने का काम कोई हिन्दू करे वह सुखी हो जायेगा, कोई मुसलमान करे वह सुखी हो जायेगा, जैन बौद्ध ईसाई , भारतीय या अमीरकन करे वह भी सुखी हो जायेगा। जो अपने चित्त को विकार विमुक्त करने लगा, वह कुदरत के अनुसार अपने जीवन को ढालने को काम करने लगा। वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। इसलिए कहा

गया- जो धर्म का आचरण करने लगा , धर्म उसकी रक्षा करने लगा। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। पर किस धर्म की रक्षा करता है-हिन्दू धर्म की,बौद्ध धर्म की, जैन धर्म की, ईसाई धर्म की, ? जंहा धर्म हिन्दू मान लिया, बौद्ध मान लिया, जैन मान लिया, ईसाई मान लिया, वही भटक गया। धर्म से बहुत दूर चला गया। रक्षा धर्म की करनी है और धर्म अपने भीतर है। जिस आदमी ने अपने विकारो को जीत लिया वह विजयी हो गया। मैने चित्त को निर्मल कर लिया तो मेरे भीतर जमा हुआ धर्म अपने आप मेरी रक्षा करने लगा, मुझे दुख से बचाने लगा, मुझे संकटो से बचाने लगा।

जीवन मे चाहे जैसे तूफान आए, एक धार्मिक व्यक्ति व्याकुल नही होता क्योकि धर्म उसकी रक्षा करता है।धर्म हर व्यक्ति का अपना होता है, समूह को नही हो सकता।एक-एक व्यक्ति को धर्म का पालन करना है। अनेक लाग पालन करने लग जाये तो बड़ी अच्छी बात है। सारे समाज में सुख शान्ति धारण करें। एक एक व्यक्ति धर्म का आचरण करे। धर्म की ध्वजा न बना लै। धर्म की ध्वजा बना लेगा- यह हमारा धर्म ,यह तुम्हार धर्म, तो संप्रदाय खड़ा कर लेगा।धर्म के नाम पर दिखावा शुरू कर देगा। ऐसे व्यक्ति में धर्म नही होगा।क्योकि धर्म के नाम पर भीववेश जगाकर वह अपना संतुलन खोता है, साथ ही लोगो का भावावेश जगाता है और उनका भी संतुलन नष्ट करता है। मजहब के नाम पर जज्बाती कट्टरता जगाता है ताकि लोग पागल हो जाये। यह धर्म कैसे हुआ ? जिसने अपना संतुलन खो दिया वह धार्मिक कैसे हो गया ? धर्म उसकी रक्षा कैसे करेगा ? जैसे ही उसने भावावेश जगाकर अपना संतुलन खो दिया, वैसी ही उसकी सुरक्षा नष्ट हो गयी। वह आरिक्षत हो गया।

धर्म एक एक व्यक्ति का

धर्म एक एक व्यक्ति का होता है। एक एक व्यक्ति धर्म का आचरण करता है तो समाज का कल्याण हो जाता है । जब सारा जंगल मुखड़ा गया हो और हम फिर चाहे की बो हरा भरा हो जाये,जो हर वृक्ष को पानी देना होगा। जब प्रत्येक पेड़ की जड़ में पानी जायेगा ता एक एक पेड़ हरा भरा हो जायेगा और तब सारा जंगल हरा भरा हो जाये तो कैसा हो ? इसलिए हम चाहे कि एक एक व्यक्ति धर्मवान हो या ना हो, पर सारे समाज में फिर से शान्ति आ न जाये, सारा समाज बड़ा सुखी हो जाय, बड़ा धनवान हो जाये-ऐसा होना संभव नही।

हिन्दू धर्म का पक्ष लेने वाले बहुत हैं, ऐसे ही बौद्ध धर्म के हिमायती बहुत हैं, मुस्लिम धर्म के, जैन धर्म के, सिक्ख धर्म के, ईसाई धर्म के, हिमायती बहुत हैं।परन्तु धर्म का हिमायती कांई नही, क्योकि धर्म धारण करना बड़ा कठिन है। सामूहिक जनून पैदा करना बड़ा कठिन होता है एक एक व्यक्ति मे धर्म जगाना बड़ा कठिन है। रक्षा एक एक व्यक्ति

की , एक एक ईकाई होती है। जिस व्यक्ति ने अपने अन्दर धर्म जगा लिया, रक्षा उस की होने लगी, धर्म उसकी रक्षा करने लगा, प्रकृति उसकी रक्षा करने लगी। वह दुखों से मुक्त होने लगा । अब उसमें कोई भय नहीं रह गया। वह निर्भय हो गया, निर्बैर हो गया। अब उसका बैरी नहीं। कोई दूसरा व्यक्ति गलत काम करता है तो उसकी प्रति करुणा जागती है मैत्री जागती है कि बैचारा रोगी है, दुखियारा है- कैसे विकार जगा रहा है और विकार जगाकर व्याकुल हो रहा है। इसे भी धर्म मिल जाये- हिन्दू धर्म नहीं, बौद्ध धर्म नहीं, धर्म आदि नहीं- धर्म मिल जाये। यह भी अपने विकारों से मुक्त होना सीख ले, अपने चित्त को निर्मल करना सिख ले, तो बड़ा सुखी हो जायेगा- सचमुच सुखी हो जायेगा। ऐसी करुणा जागने लगी तो समझो धर्मवान है। क्रोध जागने लगे तो समझो धर्मवान नहीं है द्वेष जागने लगे तो धर्मवान नहीं है। ईर्ष्या और अहंकार जागने लगे तो धर्मवान नहीं है। कोई व्यक्ति अपने को बड़ा धार्मिक कहता रहे, इस या उस तरह के अनेक कर्मकाण्ड करने लगे । कोई व्यक्ति अपने को बड़ा धार्मिक कहता रहे, इस या उस तरह के अनेको कर्मकाण्ड करता रहे, इस तरह की या उस तरह की वेष-भूषा धारण करता रहे पर यदि वह अपने में विकार जगाता है तो धर्म से बहुत दूर है। कोई मात्र यह समझ कर कि मैं ऐसे कपड़े पहनता हूं तो मैं बड़ा धर्मवान हूं और धर्म की ध्वजा उठा ले- तो समझों धर्म खतरे में पड़ गया। जब धर्म के नाम पर दिखावा होने लगता है तो समझ लो कि धर्म खतरे में पड़ गया।

धर्म व्यक्ति का होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर धर्म जगाना होता है और धर्म का जीवन जीना होता है। जब यह बात समझ आ जाए कि धर्म को संप्रदाय से दूर रखना है तब समाज में अधिक से अधिक लोग धर्म का जीवन जिने लगेंगे। फिर देखेंगे इस समाज में बहुत सुख शांति है, क्योंकि इस समाज के अधिकतर लोग धर्मवान है। अब कोई कर्मकाण्ड करे या न करे, इस तरह के कर्मकाण्ड करे या उस तरह के, लेकिन जब धर्म का जीवन जीने लगेंगे और मन को विकारों से मुक्त रखने लगेंगे तो वह समाज सुखी हो जायेगा, शान्ति से रहने वाला हो जायेगा। ऐसा देश शान्ति से रहने वाला देश हो जायेगा। इसी तरह सारा विश्व शान्ति मय बन सकता है। परन्तु इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को धर्म धारण करना होगा। अब समझें कि धर्म कैसे धारण किया जाये ?

शील पालन

धर्म के तीन चरण होते हैं। तीन कदम होते हैं। तीन सोपान होते हैं। धर्म का पहला चरण है शील-पालन।

हम शरीर और वाणी से कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे अन्य प्राणियों की सुख शान्ति भंग हो; जिससे अन्य प्राणियों को पीड़ा पहुँचती हो, वे दुखी होते हों या पीड़ित होते हो। यह धर्म का पहला कदम है।

इन चार नियमों को प्राचीन समय में चतुर्याम कहते थे। 1 हम किसी की हत्या नहीं करेंगे। 2 जो वस्तु हमारी नहीं है उसे चुरा कर नहीं, छिन कर नहीं अपनायेंगे क्योंकि वह हमारी नहीं है। 3 हम व्यभिचार नहीं करेंगे। 4 हम झूठ नहीं बोलेंगे; कड़वी बात, परनिन्दा की बात, चुगली की बात और निरर्थक बात नहीं बोलेंगे। ये चार यम हैं; ये चार नियम हैं। इन नियमों का पालन करना धर्म का पहला कदम है। यह कदम कब उठाया गया? क्यों उठाया गया? ये चतुर्याम कैसे चले? इनकी अपनी कहानी है।

बहुत पुरानी बात है। मानव समाज जब इधर-उधर भटकते हुए, जंगलों में पशुओं को मार कर जीवन यापन करते हुए और आगे बढ़ा तो पशु चराने लगा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहा। यों सदियों तक खानाबदोश का जीवन जीता रहा। एक अवस्था ऐसी आई जब उसकी समझ में आया कि धरती से अन्न भी उपजता है। धरती माता की बड़ी कृपा होती है। जरा सी भी मेहनत करें तो यह मेहनत करे तो यह अन्न देती रहेगी। इंद्र महाराज भी कृपा करते हैं। हमें जल देता है। इससे हमें अन्न मिलता है। हम एक साथ मिल कर, एक जुट हो कर मेहनत करें तो धरती माता से अन्न पैदा कर लेंगे। हम वह अन्न खाएंगे और अच्छा जीवन जीएंगे। काम शुरू हुआ। सब ने मिल कर खेती शुरू की। लोगे के समूह जगह जगह बसने लगे। यह बात बहुत पुराने जमाने की है। उस जमाने में सारी जमीन समाज की थी, किसी एक व्यक्ति की नहीं। सब मिल कर काम करते थे, मेहनत करते थे और जो उपजता उसे सब बैठ मिल कर बांट लेते थे। शान्ति का जीवन था।

कुछ दिनों तक ऐसे ही चला। यह धर्म की बात हुई। लेकिन मनुष्य का स्वभाव तो मनुष्य का स्वभाव है। धीरे-धीरे कुछ व्यक्ति सोचने लगे कि जो उपजेगा वह तो बंटवारे में मिल ही जायेगा, हम मेहनत क्या करें? दूसरे लोग तो मेहनत कर ही रहे हैं। जब फसल आयेगी तब हमें हमारा हिस्सा मिल ही जायेगा। औरों को ही मेहनत करने दें। यह सोचकर एक खिसक गया, दो खिसक गये, चार खिसक गये। वे काम तो करें नहीं, पर उन्हें अपना हिस्सा चाहिए। जो आदमी काम न करें, निठल्ला बैठा रहे, वह क्या करें? कुछ उत्पात ही करें, कुछ उपद्रव ही करे। इस तरह बात बिगड़ने लगी। व्यवस्था बिगड़ने लगी। तब समझदार लोगो ने सोचा कि जमीन का बंटवारा कर दिया जाये। हर आदमी अपनी जमीन पर स्वयं मेहनत कर के अन्न उपजायेगा और उसके यहां जो अन्न उत्पन्न होगा, वही खोयेगा। जितनी मेहनत करेगा, जितना श्रम करेगा, उतने का ही उसे फल मिलेगा। समाज एक कदम आगे बढ़ा। सारी जमीन बांट दी गयी।

फिर भी जिनको निठल्ले रहने की आदत पड़ गयी, प्रमाद में रहने की आदत पड़ गयी, आलस्य की आदत पड़ गयी, वे अब भी काम नहीं करते थे। काम नहीं किया तो उनके अपने खेत में तो कुछ नहीं उपजा, पड़ोस के खेत में बहुत कुछ उपजा। अब ये निठल्ले

व्यक्ति क्या करे? वे चोरी करने लगे, डाका डालने लगे। अपने पास नहीं तो औरो का छीनने लगे। लोगो ने कहा यह बुरी बात है। तुम काम नहीं करते और हमारा हक छिनते हो। तो लड़ाई होने लगी। तू-तू मै-मै होने लगी। गाली गलोच होने लगी। मारपीट होने लगी। हंत्याए होने लगी। समाज की व्यवस्था बिगड़ने लगी। निकम्मा पुरुष, निकम्मी नारी क्या करें? कही जा कर कोई दुष्कर्म ही करे। व्यभिचार होने लगा। परिवार की व्यवस्था बिगड़ने लगी। गृहस्थी की व्यवस्था बिगड़ने लगी। बात आगे बढ़ी तो झूठ बोलने लगे कि मैंने ऐसा नहीं किया, दूसरा व्यक्ति झूठ बोलता है। और जिसने नहीं किया, उसकी चुगली करने लगे, उसकी निंदा करने लगे। इस तरह सारी बातें बिगड़ने लगी।

तब समाज को एक व्यवस्था बनानी पड़ी। लोगो ने इकठे होकर अपना शासक चुना। इस देश का जो पहला शासक चुना गया उसका नाम महासम्मत रखा गया। सब की सम्मति से यह हमारा शासक चुना गया है। हम जो उपजायेगे उसका एक हिस्सा उसे देगे ताकि उसे बेचकर उसे जो आमदनी होगी उससे वह व्यवस्था करेगा। समाज में व्यवस्था होनी चाहिए, नियम होने चाहिए। पहले चार नियम यह बने कि कोई आदमी हत्या करेगा तो उसे दंड दिया जायेगा। कोई आदमी चोरी करेगा तो उसे दंड दिया जायेगा। कोई आदमी व्यभिचार करेगा तो उसे दंड दिया जायेगा। कोई आदमी झूठ बोलकर किसी को ठगेगा या कड़वी बात बोलेगा या निंदा की बात करेगा तो उसे दंड दिया जायेगा। ये चार धर्म चतुर्याम के रूप में लोगो के ऊपर लागू हुए। यह इस देश का बहुत पुराना इतिहास है। आज हम भूल गये क्योंकि बहुत सा पुराना साहित्य ही हमारे यहां से लुप्त हो गया।

कुछ दिनों तक ऐसा चला। उसका अपना लाभ हुआ। धीरे-धीरे समय बदलता चला गया। बात आगे बढ़ती चली गयी। लोगो ने कही से दूढ लिया कि अमूक वृक्ष का फल का रस निकालकर सड़ाया जाय फिर उसे पिया जाय तो बड़ा आन्नद आता है, बड़ा मजा आता है। एक ने पिया उसे नशा आया। दूसरे ने पीया उसे भी नशा आया, तीसरे ने पीया उसे भी नशा आया, अब मादकता की लत पड़ी। मदिरा की लत चल पड़ी। मदिरा का नशा चलने पड़ा। आगे चले तो गांजे, भांग, धतूरे का नशा चल पड़ा। जो व्यक्ति नशा करते हैं वे बुद्धि के स्तर पर खूब समझते हैं कि हमें हत्या नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, व्यभिचार नहीं करना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए। पर वे क्या करे? जब नशे में प्रमत्त हो जाते हैं तो होश खो बैठते हैं। अपने मन की मिल्कियत खोने लगते हैं। उस नशे के गुलाम हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में जो काम नहीं करना चाहिए, वे सब कर बैठते हैं। अतः नियम बना दिया गया कि नशा कोई नहीं करेगा। यो चतुर्याम में एक और नियम जोड़ दिया गया। चतुर्याम के साथ पांचवा याम जोड़ा गया। उसे पंच-शील याने पांच नियम कहा गया।

समय बीतता गया, समाज आगे बढ़ता गया। लोगो ने देखा यह नशा केवल मादक पदार्थों का ही नहीं होता। नशा और भी बहुत तरह का होता है। एक आदमी जुआ खेलता है। उसे जुए को ऐसा नशा चढ़ जाता है कि सारा होश खो बैठता है। फिर जुआ खेलने के लिए चोरी भी करता है, हत्या भी करता है। बह कोई भी बुराई कर जाता है क्योंकि अब वह जुए में प्रमद हो गया है। उस पर जुए का नशा चढ़ गया है। इस बुराई से लोगो को बचाने के लिए पाचवे नियम में यह जोड़ दिया गया कि पमादटना । इस प्रकार यह नया नियम बना- सुरा मेरय मज्ज पमादटना बेरमणी। कच्ची शराब, पक्की शराब तथा मदिरा के साथ साथ प्रसाद के अन्य जितने साधन है यानी जिन बातों से प्रसाद चढ़ता है, उन सबसे बेरमणी यानी विरत रहना है, दूर रहना है।

धीरे-धीरे देखा, नशा और तरह का भी होता है। एक और बड़ा नशा धन का होता है। आदमी धन कमाता है, धन संग्रह करता है। बड़ा परिग्रह कर लेता है तो बहुत नशा चढ़ता है। धन के संग्रह का जो नशा है वह सारे नशों से बढ़कर है। सत्ता का नशा भी उतना बड़ा नहीं होता जितना बड़ा धन का नशा है। आदमी पागल हो जाता है। अपनी हानि करता है, औरों की भी हानि करता है। धन कमाना दोष नहीं है। गृहस्थ को कंगाली शोभा नहीं देता, संन्यासी को धनवान होना शोभा नहीं देता। इसलिए परिश्रम करके न्यायपूर्वक ही धन कमाना चाहिए। लेकिन धन कमाकर प्रमत्त हो जाए, अपना होश खो बैठे तो अपनी हानि कले लगेगा। ऐसा व्यक्ति केवल अपनी ही नहीं, औरों की भी हानि करने लगेगा। यह भी पमादटना- प्रमाद का कारण है। इसलिए सिखाया गया अपने धन का संविभाग करना चाहिए। धन क संविभाग करेगा तो परिग्रह के नशे से दूर करेगा, संग्रह के नशे से दूर रहेगा ।

दान शब्द का प्रचलन तो बहुत बाद में हुआ । दान देने वाला बड़े अहंकार के साथ दान देता है , समा के प्रति अपना कर्तव्य समझ कर नहीं देता । इसलिए सिखाया गया कि अपने धन का औरों के साथ संविभाग करो, अपना धन औरों में बांटो । अपने पास जो आया है वह और औरों में भी बांटा जाए । इस प्रकार धर्म के नाम पर संविभाग शुरू हुआ । जो आदमी मेहनत करता है, परिश्रम करता है, धन कमाता है , उसमें एक मोद जागे कि मैं परिश्रम कर के यह धन कमा रहा हूं , वह केवल अपने या अपने रिवाज के मौज शौक के लिए नहीं है । गृहस्थ हूं तो अपने भरण पोषण तथा अपने परिवार का भरण पोषण करना मेरा कर्तव्य है । लेकिन इस पर समाज की तो हक है । इसलिए मैं इस धन का संविभाग करूं ताकि इस धन से औरों को भी लाभ हो उनका भी मंगल सधे । जैसे मैं अपने अंदर धर्म धारण कर के सुख शांति अनुभव करने लगा , वैसे ही अन्य लोग भी अपने भीतर धर्म धारण कर के सुख शांति अनुभव करने लगे । मेरा यह धन उनके भी काम आए । कोई निर्धन है और बड़ा दुखी है तो उसका दुख दूर करने के लिए मेरा धन काम आए । समाज में संविधान की प्रथा चल पड़ी ।

इस प्रकार पांच शील बने । इनके कारण समाज का कल्याण होता रहा । समाज के संविभाग की प्रथा चल पड़ी ।

शील पालन क्यों

समाज के सब लोग एक जैसे मानसिक स्तर के नहीं होते । कुछ ऐसे भी होते हैं जिनकों बच्चों की तरह बात समझानी होती है। देश के धर्म नेताओं ने जैसे बच्चों को समझाया जा वैसा लोगों को समझाया। उन्होंने समझाया कि शील का पालन करोगे तो स्वर्ग मिलेगा। यह स्वर्ग बहुत सुन्दर है, उसमें बड़ा आनन्द है, बड़ा सुख है। जैसे एक बच्चे को कहे कि मन लगाकर पढ़ने पर चाकलेट मिलेगी, तो पढ़ाई जरूर करेगा। भले इसी लोभ के कारण पढ़ेगा कि चाकलेट मिलेगी। इसी तरह स्वर्ग के लालच के कारण ही सही, शील पालन की और लोगों की रुचि होने लगी। आगे समझाया गया सदाचार का जीवन नहीं जियोगे, दुराचार का जीवन जियोगे तो, तो नरख मिलेगा। साथ ही नरख के दुखों का वर्णन किया। नरक किसे चाहिये: सभी को स्वर्ग चाहिए। स्वर्ग के लोभ के कारण ही सही, नरक के भय के कारण ही सही, लोग शील का पालन तो करे।

जो समझदार लोग थे उन्हें समझदारी से समझाया गया। धर्म को जब समझदारी से समझते हैं तो पालन करना आसान होता है। अंधविश्वास कब तक चलेगा? बुद्धि शालर मनुष्य है तो ऐसा चिंतन कर सकता है कि कौन जाने मरने के बाद क्या होगा: इनकी बात क्यों मानें? ऐसे लोगों को बुद्धि के स्तर पर समझाया गया कि जैसे हमें कोई मारे हमें अच्छा नहीं लगता, वैसे हम किसी को मारे तो उसे कैसे अच्छा लगेगा? हमारी बहुत प्रिय कोई चीज चुरा ले तो हमें कैसा लगेगा, बुरा लगेगा। ऐसे ही हम किसी दूसरे की प्रिय वस्तु हम चुरा ले तो उसे कैसा लगेगा? मेरी पत्नी या पति कोई व्यभिचार कर ले मो मुझे बुरा लगेगा। ऐसे ही हम किसी की पति पत्नी के साथ व्यभिचार करे तो उसे बुरा लगेगा। जैसे कोई झूठ बोलकर, चुगली कर, गाली दें, निंदा करे तो हमें बुरा लगेगा। ऐसे ही हम किसी की चुगली खाए, गाली दे, निंदा करे तो उसे बुरा लगेगा। अतः सब को हम अपने जैसा समझे। जैसे हम है, वैसे सब है। बात ठीक लगी इसलिए बुद्धि से जरा समझने लगा। मनुष्य अब धर्म को बुद्धि से समझने लगा कि जो बात मुझे प्रिय नहीं लगती, वह औरों को भी प्रिय नहीं लगती। मेरे प्रति कोई ऐसा काम करें, जो मेरा जी दुखाये या मुझे पीड़ित करें, वैसा काम मैं औरों के लिए करूंगा तो उनका भी जी दुखाऊंगा, उनको भी पीड़ित करूंगा। इसलिए ऐसा काम मुझे नहीं करना चाहिए।

देश में जो धर्मवान व्यक्ति हुए, ऋषि, मुनि, बुद्ध, अरहत हुए वे इसीलिए बुद्ध , अरहत

स्थितप्रज्ञ, अनासक्त, जीवनमुक्त हुए क्योंकि उन्होंने अपने भीतर धर्म का जीवन जी कर देख लिया। उन्होंने कुदरत का सारा कानून समझ कर देख लिया। इन संतो ने बड़े धीरज के साथ एक और तरीके से धर्म को समझाया।

हमारे चारों ओर आग लगी हो और हम आग के बीच में बैठे हो तो वह हमें संतापित ही करेगी, व्याकुल ही करेगी। हमें शांति या शीलता कैसे मिलेगी? कभी नहीं मिलेगी। उसी प्रकार हम सदाचार को तोड़ेगे तो हमारे आसपास के सारे लोग दुखी हो जाएंगे। हम हत्या करेगे चारी करेगे व्यभिचार करेगे तो चारों ओर अंशान्ति ही अंशान्ति फैलायेगे। हमारे चारों ओर अशांति हो और हम शांति चाहें, यह कैसे होगा? हमें शांति चाहिए तो अपने आसपास के वातावरण में शांति होनी चाहिए। समझ में आने लगा कि बात तो ठीक है। ऐसा होना ही चाहिए। और समझाया गया कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में रहना है। जिस समाज में सुख-शांति कहां से मिलेगी? अतः समाज में सुख-शांति होनी चाहिए।

इस तरह धर्म की बात समझाई गयी। धीरे-धीरे लोग पालन करने लगे। फिर भी कठिनाइयां रही, क्योंकि धर्म का सही स्वरूप समझना बड़ी बात है। जिन लोगों ने धर्म के ये नियम बनाये उन्होंने राज्य की व्यवस्था के लिए या केवल समाज की व्यवस्था के लिए ये नियम नहीं बनाये। उन्होंने कुदरत के कानून को बड़ी गहराई के साथ अनुभूति द्वारा समझ लिया था। उन्होंने अपने भीतर धर्म को दर्शन कर लिया, कुदरत के कानून का, ऋत का दर्शन कर लिया था। उन्होंने जान लिया था कि कुदरत का कानून क्या कहता है? कुदरत का कानून कहता है कि ऐसा ऐसा करोगे तो सुखी हो जाओगे। यदि ऐसा ऐसा नहीं करोगे तो दुखी हो जाओगे। इस नियम को इस धर्म को अपने अनुभव से जानो।

धर्म को स्वानुभाव से जानो

हमने मान लिया कि हत्या नहीं करनी चाहिए। यह बात इसलिए मान लेते हैं कि जिस महापुरुष पर हमारी श्रद्धा है उसने ऐसा कहा है। कभी सुनी सुनाई बात पर भी हम चिंतन कर के मान लेते हैं कि किसी का भी जी दुखना ठीक नहीं है। इसलिए हमें हत्या नहीं करनी चाहिए। लेकिन यह अनुभव नहीं हुआ कि हत्या क्यों नहीं करनी चाहिए? हत्या करते समय हमारे चित्त और शरीर में क्या परिवर्तन होने लगता है, जिसके कारण हम दुखी हो जाते हैं, यह देखना नहीं आया।

जब अपने भीतर देखना आ जाय तभी यह बात समझ में आयगी। इसलिए महापुरुषों ने धर्म का दर्शन कराना सिखाया। उसी को पुरानी भाषा में कहा- सम्यक दर्शन। सही बात जैसी है, वैसी है- उसको तटस्थ भाव से देखो, साक्षी भाव से देखो। कुदरत के नियमों को अनुभूति स्तर पर देखो। अपने भीतर की सच्चाई को यथाभूत देखो। कोई कल्पना नहीं

करनी है जैसी है वैसी सच्चाई देखो; द्रष्टाभाव से देखो। सारा कानून समझ में आने लगेगा। सारा धर्म समझ में आने लगेगा। इसी को विपश्यना कहते हैं।

एक व्यक्ति जब भीतर की सच्चाई देखता है तो अपने अनुभव से समझ जाता है कि मैं हत्या तब तक नहीं कर सकता जब तक मन में कोई विकार न जगा लूं। पहले अपने भीतर क्रोध जगाऊंगा, द्वेष जगाऊंगा, दुर्भावना जगाऊंगा। जब यह दुर्भावना बड़ी तेज होगी तब किसी की हत्या कर पाऊंगा। साधक अपने भीतर देखता है तो जानने लगता है कि जब जब मैंने क्रोध जगाया, द्वेष जगाया, दुर्भावना जगायी- कुदरत ने मुझे तुरंत दंड देना शुरू कर दिया; धर्म ने मुझे तुरंत दंड देना शुरू कर दिया। मैं व्याकुल हो गया, अंशांत हो गया। जिसकी हत्या की बह तो जब हत्या हुई तो थोड़ी देर के लिए व्याकुल हुआ, पर मैं तो उससे पहले ही व्याकुल हो गया। जैसे ही मैंने क्रोध जगाया, द्वेष जगाया, दुर्भावना जगायी जैसे ही मैं व्याकुल हो गया। अब यह जानकारी कोरे उपदेश की बात नहीं रही। अब यह धर्म-प्रवचनो, धर्म-शास्त्रो, या दार्शनिक मान्यता की बात नहीं रही। अब अनुभव करता हूँ कि जब जब क्रोध जगाता हूँ, बड़ा बैचेन, बड़ा अंशांत हो जाता हूँ। धर्म का यह कानून समझ में आने लगता है कि जब जब मैं किसी की सुख शांति भंग करता हूँ तब तब मैं व्याकुल हो जाता हूँ। जैसे हत्या करने के लिए विकार जगाता हूँ जैसे ही चोरी करने के लिए विकार जगाता हूँ। अपने भीतर पहले लाभ जगाता हूँ और जब लोभ बढ़ता है तो मैं चोरी करता हूँ। जब लोभ जगाता हूँ तब मन के भीतर देखता हूँ कि मैंने अपने मन का चैन खो दिया। मैंने अपने मन की शांति खो दी। मैं बड़ा व्याकुल हो गया। उसी प्रकार मैं देखता हूँ कि व्यभिचार करने से पहले मन में वासना जागती है। तीव्र वासना जागती है तब व्यभिचार करता हूँ। और वासना जागी तो मन ने अपनी समता खो दी; अपना संतुलन खो दिया; अपनी शांति खो दी; अपना चैन खो दिया। कुदरत ने दंड देना शुरू कर दिया क्योंकि मैंने वासना जगाई।

कोई भी व्यक्ति जब सदाचार तोड़ता है और वाणी से या शरीर से दुष्कर्म करता है, जिससे अन्य प्राणियों की शांति भंग होती है, तो देखता है कि सबसे पहले अपनी शांति भंग होती है। स्वयं अपने भले के लिए मुझे अपनी वाणी से ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे अन्य प्राणियों की शांति भंग हो। यह बात हर किसी को समझ में आ जाय और स्वयं को समझ में आ जाए तभी बात बनती है।

किसी धर्म सभा में एकत्र होकर या पुस्तक पढ़ कर धर्म की बात बुद्धि से तो खुब समझ में आ जाती है। पर कुछ समय में देखता है कि मैं वैसा ही का वैसा हूँ। कोई अंतर नहीं पड़ा। सब भूल गया। बात नहीं बनी। जिस दिन अनुभव करने लगेगा उस दिन अपने भीतर अपने विकारों का दर्शन करने लगेगा, तब धर्म का दर्शन करने लगेगा। अनुभव से जानेगा कि यह विकार जागा और मेरा संतुलन नष्ट हुआ, मेरी शांति नष्ट हुई, मेरा

सुख नष्ट हुआ। मैं बड़ा व्याकुल हो गया। विकार दूर हुआ तो मेरी अशांति दूर हो गयी, मेरा दुःख दूर हो गया। बड़ी शांति मालूम होने लगी, बड़ा सुख मालूम होने लगा।

यह कुदरत का अपना नियम है इस नियम को हिन्दू, बौद्ध या मुस्लिम नियम कैसे कहेंगे? जब इस बात को स्वयं जानेगे तब बात समझ में आयेगी। संप्रदाय और धर्म का भेद खूब समझ में आने लगेगा। इस नियम को इस धर्म को हिन्दू कैसे कहे, इसे बौद्ध जैन ईसाई कैसे कहे? ये सारे के सारे तो समाज है, समूह है, संप्रदाय है। संप्रदाय अपनी जगह रहे; अपने पर्व-त्योहार मनाते रहे; वशर्ते कि किसी अन्य की भावनाओं को चोट न पहुँचाए, अपने व्रत-उपवास करते रहे; अपने कर्मकाण्ड करते रहे; अपनी दार्शनिक मान्यता मानते रहे। उनका धर्म से कोई लेन-देन नहीं है। धर्म तो चीत को विकारों से मुक्त करता है। चित्त को विकारों से भर लेना अधर्म है। बस इतनी सी बात समझ में आ जाय तो जड़ की बात समझ में आ जाय; मूल बात समझ में आ जाय। अब कोई अपने को हिन्दू कह कर खुश रहे कोई बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम कह कर खुश रहे। नाम चाहे कैसा हो, नाम में क्या अंतर पड़ता है? यदि धर्म जान लिया और उसे धारण करने लगे तो धर्मवान हाने ही लगे।

चैन की बंसी

यह बात समझ में आ जाय कि धर्मवान कैसे बने तो पूरे जीवन में होश जागने लगेगा। जो नशा चढ़ता है वह अपने आप दूर होने लगेगा। जान जायेगा कि अहंकार का नशा चढ़कर बहुत प्रमत्त हो जाता है। अहंकार का नशा मैं धर्म के नाम पर भी चढ़ लेता हूँ। मैं कट्टर हिन्दू हूँ और उस अहंकार के कारण कितना व्याकुल रहता हूँ। जब यह अहंकार दूर हो जाता है तो देखता हूँ कि व्याकुलता दूर होगयी। मुझे शांति मिल गयी।

धर्म का संप्रदाय से कोई लेन-देन नहीं होता है। धर्म अपने आप में बिल्कुल अलग है। संप्रदाय समूह का होता है। धर्म व्यक्ति का होता है। विकारों से अपनी वाणी को मुक्त रखेगा तो शरीर से ऐसा काम कर ही नहीं सकेगा जिससे अन्य प्राणी की सुख शांति भंग हो। ऐसा कोई काम कर ही नहीं सकेगा जिससे अन्य प्राणियों को पिड़ा पहुँचे, क्योंकि हमेशा भीतर देखने की आदत पड़ जायेगी। कोई गलत काम करने से पहले विकार जागेगा कि देख! मैं व्याकुल हो गया, कुदरत मुझे दंड देने लगी। बस, आगे बढ़ेगा ही नहीं। वहीं विकार से छुटकारा पाकर शांत हो जायेगा। अपना कल्याण साध लेगा। यों धर्म समझ में आने लगेगा। धर्म धारण करने लगेगा।

धर्म समझ मैं नहीं आता तो धर्म के नाम पर व्याकुल हो जाता है। एक धर्मवान व्यक्ति कहता है कि मैं गृहस्थ हूँ इसलिए धन कमाना चाहता हूँ। जहाँ धन कमाना मेरा धर्म है, वहाँ उसका सदुपयोग भी तो मेरा धर्म है। यह होश नहीं रहता तो आदमी किस

प्रकार पागल हो जाता है। लाख कमालिये तो इस बात की चिंता आरंभ हो जाती है कि करोड़ कैसे हो जाये। अपने पड़ोसी से वह एक उगल कैसे रहे। उसकी आमदनी औरो से कैसे ऊची रहें। इस चिंता में ऐसी हालत बना लेता है कि न रात को नींद है न ही दिन को चैन।

अपने यहा एक कहानी चलती है। धर्म की बात उदाहरण से समझाने के लिये कहलियां होती है। कहानी है कि बम्बई महानगरी को एक बहुत बड़ा सेठ था। धन कमाने की भाग दौड़ में पागल हो गया-धन कमाओ, धन कमाओ और धन कमाओ। इतना धन आ गया तो इससे अधिक चाहिए, और अधिक। बैचारे को रात में नींद नहीं आये तो रात को नींद की गोलिया खाकर सोये। दिन को चैन नहीं पड़े तो दवाईयां ले। तनाव ही तनाव देखकर डाक्टर ने कहा,-अपने काम को जरा धीमे करो। भीतर इतनी उत्तेजना है इसलिए इतना व्याकुल हो। ऐसा ही रहा तो लगता है कि एक समय ऐसा आयेगा कि तुम्हे तनाव को रोग हो जायेगा, आगे जाकर हृदय का रोग हो सकता है, पक्षाघात का रोग हो सकता है। यह सुनकर धबराया और पूछा कि क्या करू? जवाब मिला कि “यह व्याकुलता इन दवाईयों से ठीक नहीं होगी। तुम अपना तनाव कम करो। कुछ समय के लिये अपने व्यापार को भूल जाओ। महीने भर किसी गाँव में जाकर रहो” लकवा मारने या दिल का दौरा पड़ने का डर सबको लगता है। “पैसा नहीं आये तो नहीं आये, मैं सुखी तो रहूँ, मैं रोगी तो न हो जाऊँ, मैं तो न जाऊँ।” यह सोचकर वह गांव चला गया।

लेकिन जैसे होने का बड़ा अहंकार होता है। धन का मद जितना बड़ा होता है, उतना बड़ा कोई मद नहीं होता। वह व्यक्ति गांव में घुमता है और सोचता है कि यहां के लोग बड़े गये गुजरे हैं। महनत नहीं करते इसलिए गरीब हैं। मेरी तरह मेहनत करें तो कितने धनवान हो जायेगे, कितनी उन्नति हो जायेगी। ये लोग बड़े आलसी हैं, बड़े प्रमादी हैं। शाम के समय घुमते हुए देखता है कि एक ग्वाला पेड़ के नीचे बैठा है। कमर में एक धोती लपेटे है ऊपर से नंगा है और अपनी बांसुरी बजा रहा है। दो-चार गायें चर रही हैं। उसने एक दिन देखा, दो दिन देखा। आखिर नहीं रहा गया। उसका अहंकार बोलने लगा और उपदेश देने लगा।

सेठ ने ग्वाले से कहा- “अरे बावले आदमी, दिन भर यहां बैठकर बंसी बजाते हो। जरा महनत करो तो और अधिक कमा लोगे।”

ग्वाले ने पूछा- ‘उससे क्या हो जायेगा?’

सेठ - ‘अभी तो केवल चार गायें चरता है तो थोड़े पैसे मिलते हैं। तु और लोगों की गायें भी ले ले। आठ गायें चरा, बीस गायें चरा। और अधिक पैसे मिलेगे।’

ग्वाला- 'अधिक पैसे होने से क्या होगा ?'

सेठ - ' क्या तू पैसे का उपयोग भी नहीं जानता ? अरे,तू उन पैसे से एक गाय खरीद सकेगा।' तेरी अपनी गाय हो जायेगी ?'

ग्वाला- 'अपनी गाय हो जायेगी तो क्या होगा ?'

सेठ - ' बड़ा अजीब आदमी है। तेरी अपनी गाय हो जायेगी। अब तक तू औरो की गाय चराता था। फिर तू अपनी गाय चराना।'

ग्वाला- ' फिर भी गाय ही चराऊंगा।'

सेठ - ' अपनी गाय का दूध ही बेचोगे। उसका पैसा आयेगा।'

ग्वाला - ' दूध बेचूंगा, पैसा आयेगा, फिर क्या होगा ?'

सेठ - ' पैसे इक्कठ कर लेगा तो दो गाय खरीद लेगा। फिर उसका दूध बेचेगा ता दस गाय खरीद लेगा। फिर सौ गाय खरीद लेगा और धीरे धीरे तेरे पास इतना पैसा हो जायेगा कि तू चैन बंसी बजायेगा।'

ग्वाला- 'चैन की बंसी तो मैं अब भी बजा रहा हूं। मैं तो चैन की बंसी बजा रहा हूं। चैन तो तुमने अपनी खो दी है और मुझे चैन की बंसी बजाने की सीख देते हो ?'

अक्सर लोग किस प्रकार पागल हो जाते हैं। बिल्कुल होश नहीं रहता। यदि पागल नहीं है, प्रमत्त नहीं है,तो धन होते हुए भी चैन की बंसी बजा सकते हैं। प्रमत्त होते हैं धन आता है तो अंकार जागता है,चित्त संकुचित्त होता है। 'मे इतना धनवान हूं' ऐसा पागलपन सिर पर सवार होता है। प्रमत्त नहीं होंगे तो सिर पर प्रमत्त जायेगा। चित्त में प्रसन्नता होगी। समझेगे यह धन समाज से आया है-इस पर समाज का भी हक है। अपने भरण-पोषण के साथ साथ , अपने परिवार के भरण-पोषण के साथ-साथ इसका कुछ भाग समाज में बांटना चाहिए। इसका संविभाग होना चाहिए। जो लोग दुखियारे हैं उनका दुख दूर होना चाहिए। जो लोग अंशात हैं उनको शांति मिलने का साधन होना चाहिए। वे भी अंतमुखी होकर अपने विकारों को दूर कर शान्ति का जीवन जीने लगे। इस प्रकार मेरे धन का सदउपयोग होगा। यह समाज का ही धन है। मेरे पास आ गया तो उसका सदउपयोग करू। जब ऐसा व्यवहार करने लगेगा तब सारा ढाचा ही बदल जायेगा। सारा दृष्टिकोण ही बदल जायेगा। बड़ा शांत हो जायेगा। बड़ा सुखी हो जायेगा।

धर्म का पहला कदम है- शील का जीवन जियें, सदाचार का जीवन जियें। शील यानी शीतलता। हमारे चित्त की शीतलता नष्ट हो जाये; हमारे चित्त में अग्नि जलने लगे, चित्त संतपित होने लगे, होने लगे तो हम शीलवान नहीं है, व्याकुल होने लगे तो हम शीलवान नहीं हैं हम दुःशील हैं । सदाचार का जीवन का अर्थ है सत्य का जीवन जीना, सत्य का आचरण करना । आजकल वाणी से सत्य बोलने को सच कहते हैं । सत्य का यह बहुत छोटा अर्थ है । सही माने में सत्य का अर्थ है कि कुदरत की जो सच्चाई है उसे समझते हुए, धर्म को समझते हुए कुदरत के नियम को समझते हुए हम अपना जीवन ढालें ।

धर्म धारण करें तो ही लाभ होता है ।

धर्म को केवल सुनकर मान लेना अच्छी बात है, पर पूरी तरह अच्छा नहीं है । धर्म को अपने चिंतन द्वारा या अपनी बुद्धि द्वारा तर्क के तराजू पर तोल कर मान लेना अच्छा है । पर पूरी तरह अच्छा नहीं है । धर्म को अनुभूति से जानकर मान लेना सबसे अच्छा है । कल्याण इसी से होता है ।

एक उदाहरण से समझें । एक आदमी को बड़ी भूख लगी थी । वह किसी बहुत बढ़िया रेस्टोरेन्ट में । भोजन करने गया । बैठते ही बैरे ने हाथ में मीनू कार्ड थमा दिया । वह व्यक्ति मीनू कार्ड पढ़ता है तो देखता है आज तो इस रेस्टोरेन्ट में बहुत बढ़िया भोजन बना है । मुंह में जरा पानी आता है । बैरे को आदेश देता है मेरे लिए अमुक अमुक भोजन ले आओ । यह एक घटना घटी ।

भोजन आने में दस पंद्रह मिनट लगेंगे । इस बीच वह व्यक्ति इधर उधर देखता है । बाकी कुर्सियों पर जो लोग बैठे हैं , उनकी टेबल पर भोजन परोस दिया गया है और वे भोजन खा रहे हैं । भोजन स्वादिष्ट हो तो खाने वाले के चेहरे पर प्रसन्नता के भाव आते हैं । वह इनके चेहरों को देखता है । इनके चेहरे के रंग ढंग बताते हैं कि उनको भोजन बहुत स्वादिष्ट लग रहा है । विचार करता है सचमुच आज का भोजन बहुत स्वादिष्ट होगा । यह दूसरी घटना घटी । कुछ समय बाद बैरे ने भोजन लाकर परोस दिया और वह स्वयं उसे चखने लगा । यह तीसरी घटना घटी । यह तीसरी घटना सबसे अधिक काम की थी ।

हमने कोई शास्त्र पढ़ा या गुरु महाराज की वाणी सुनी तो यह घटना उस घटना के समान हुई, जहां हमने रेस्टोरेन्ट में मेनू कार्ड पढ़कर समझ लिया था कि भोजन बढ़ा अच्छा है । फिर बुद्धि से चिंतन करके समझा कि शास्त्रों में या गुरु महाराज ने जो धर्म

समझाया है वह बड़ा अच्छा है । यह उस दूसरी घटना के समाज है जिसमें भोजन करते लोगों के चेहरे देख कर समझा कि यह भोजन सचमुच बड़ा अच्छा है । अभी तक अनुभव नहीं हुआ । अभी केवल बुद्धि के स्तर पर ही स्वीकार किया है । जब धर्म को धारण कर लेता है तब उस तीसरी घटना के समान स्वयं चख कर देख लेता है । जान लेता है कि धर्म कितना अच्छा है । बौद्ध धर्म नहीं, हिन्दू धर्म नहीं, मुस्लिम धर्म नहीं, जैन धर्म नहीं, ईसाई धर्म नहीं ।

जब मैं अपने चित्त में धर्म धारण करता हूँ, यानि अपने चित्त को विकारों से मुक्त रखता हूँ तो देखता हूँ बड़ा आनन्द आता है, बड़ा सुख मिलता है । इस सुख के सामने बाहर के सारे सुख फीके पड़ जाते हैं । भीतर जब समता आती है तो उस समता से जैसी शांति मिलती है, वैसी शांति बाहर कहीं नहीं मिल सकती । किसी बात में नहीं मिल सकती । सब्बरसं धम्मोरसों जिनाति । धर्म का रस चखने लगा तो अन्य सारे रस फीके पड़ने लगते हैं । अब अपने अनुभव से जान गया कि इसके मुकाबले अन्य रसों का महत्व नहीं है । जान गया कि धर्म का रस सबसे उंचा रस है , सबसे मीठा रस है ।

अनुभव से धर्म की सही जानकारी होती है । फिर तो यह धर्म हमारी रक्षा करने लगता है । धर्मो रक्षति रक्षितः अपने भीतर हमने धर्म की रक्षा की तो धर्म हमारी रक्षा करने लगा । ये अनुभव के फल हैं । “ धम्मो हवे रक्खति धम्मचारि ” धर्मचारी धर्म का आचरण करता है तो धर्म उसकी रक्षा करने लगता है । धम्मचारी सुखं तेति जो धर्म का आचरण करता है वह बड़े सुख की नींद सोता है । उसको नींद की गोलियां खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । भीतर बड़ी शांति पाता है , बड़ा सुख पाता है । ऐसी शांति, ऐसा सुख प्रवचनों से या पुस्तकों से नहीं मिलता शास्त्र पढ़ लेने से नहीं मिलता । चिंतन मनन कर लेने से नहीं मिलता । यह सुख अनुभव करने से ही मिलता है धारण करे तो धर्म है । धारण तो करे नहीं और धर्म की बातें करें कि धर्म ऐसा होता है या धर्म वैसा होता है, तो इन कोरी बातों से क्या लाभ ।

एक रोगी आदमी एक डाक्टर के पास गया । डाक्टर ने जांच करके यह बताया कि तुझको अमुक रोग है पर घबराने की कोई बात नहीं । मैं दवा लिख देता हूँ यह दवा ले लो रोग ठीक हो जाएगा । डाक्टर दवा क एक पुर्जा लिख देता है । रोगी को डाक्टर पर बड़ी श्रद्धा हुई । घर आकर उसने अपने कमरे में डाक्टर का एक चित्र लगाया और उसको नमस्कार करने लगा । डाक्टर की खूब बड़ाई करने लगा देखो हमारा डाक्टर कितना अच्छा है उसके कितनी अच्छी दवाई लिख कर दी है । या उससे आगे बढ़ा तो डाक्टर के पास जाकर प्रश्न करने लगा । आपने जो दवा लिख कर दी है उससे मैं कैसे ठीक होऊंगा । डाक्टर उसे समझाता है । दवा लोगे तो यह कारण को नष्ट कर देगी । जब रोग का कारण दूर हो जाएगा तो तुम्हारा रोग दूर हो जाएगा । सुनकर वह बहुत खुश हुआ ।

हमारा डाक्टर तो बड़ा होशियार है । घर पर अया तो सबसे लड़ने लगा हमारा डाक्टर सबसे होशियार है तुम्हारा डाक्टर गया गुजरा है तुब सबके डाक्टर गए गुजरे हैं । हर महापुरुष एक डाक्टर की तरह संसार में आता है । वैद्य की तरह आता है महाभिषक की तरह आता है । देखता है लोग रोगी हैं उनको दवा देता है । उनको दवा का एक पुर्जा देता है । हम पागल हैं कि उसकी दी हुई दवा के बजाय उसकी मूर्तिया बनाकर उसके चित्र बनाकर उसके नमस्कार करके ही खुश हो जाते हैं। बहुत हुआ तो जो उसने दवा का पुर्जा दिया उसको देखकर खुश हो जाते हैं। अपने गुरु महाराज के दिये हुए धर्म का केवल पाठ ही करते हैं। हमारे भगवान राम ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने, महम्मद ने, हमारे रोग को दूर करने का जो इलाज दिया है। उसे इलाज के पुर्जे का पाठ कर हम समझ लेते हैं बड़ा पुण्य होगा। भला पुर्जे का पाठ करने से क्या पुण्य होगा? उसने जो दवा लिख कर दी उसे लेने पर ही रोग दूर होगा।

यह बात भूल ही गये कि धर्म धारण करना पड़ता है। यह बात भूल गये तो दुखी से मुक्त होना भूल गये। अपने आपको हिंदू कहे तब भी दुखियारा है, मुसलमान कहे तब दुखियारा है। अपने आपको बौद्ध कहने से, मुस्लिम कहने से, ईसाई कहने से, जैन कहने से, तो धर्म नहीं जागेगा। यदि सचमुच धर्म अपने भीतर जाग जाय तो फिर अपने आपको चाहे जिस नाम से पुकारे, कोई अंतर नहीं पड़ेगा। सुखी हो ही जायेगे। दुख के बाहर निकल ही जायेगें।

धर्म का यह पहला कदम है- शरीर और वाणी से ऐसा कोई काम नहीं करें जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती हो। क्योंकि ऐसा कोई भी काम करते हुए पहले हम अपनी सुख शांति भंग करगें। हम पहले अपने आप को दुखी बनायेगे तब किसी दूसरे को दुखी बनायेगे। यह कुदरत को नियम है। यह कुदरत का विधान है, विश्व का विधान है।

यह ऋत है, यह धर्म है। यह बात समझ में आने लगेगी। तब आगे की बात और समझ में आने लगेगी कि दूसरा कदम कैसे उठाये। तीसरा कदम कैसे उठाये।

महाभारत में दुर्योधन का प्रसंग है। दुर्योधन क्यों 'दुर्योधन' है? जो योद्धा होता है उसके पास युद्ध करने के साधन अच्छे होते हैं तो सुयोधन होते हैं। इसके वे साधन खराब हैं इसलिए यह दुर्योधन है। अगर योधन अच्छा होगा तो सयोधन अच्छा होगा। इसके मानस का जो हथियार है, वह बिगड़ा हुआ है इसलिए दुर्योधन है। वह कहता है-

‘ जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्तिः,

जानामि अधर्मम् न च मे निवृत्तिः’।

- खूब जानता हूं कि यह धर्म है फिर भी धर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती; वैसा कर ही नहीं पाता, करने को जी ही नहीं चाहता। यह भी खूब जानता हूं कि यह अधर्म है तो भी उससे निवृत्ति नहीं होती; उससे छुटकारा नहीं मिलता। बेचारे मानव को होश नहीं है, पागल है। कहता है कि मेरे भीतर कोई देवता बैठा है जो मुझसे जैसा करवाता है मैं वैसा कर देता हूं। मैं क्या करूं? मैं खूब जानता हूं यह अधर्म है, इससे निवृत्ति होनी चाहिए, लेकिन नहीं होती। मैं खूब जानता हूं यह अधर्म है, केवल माना है; किसी से सुना है या कहीं पढ़ा है। जानना तो तब होता जब उसे अनुभव होता। अभी तो वह केवल मान रहा है।

एक आदमी केवल मान कर कहता है- मैं धर्म को जान गया। उसने एक पुस्तक पढ़ ली तो समझता है मैं धर्म को खूब जान गया। उसने गुरु महाराज का प्रवचन सुन लिया तो समझना है अब तो धर्म को और अच्छी तरह जान गया। उसने पंडितजी को सुन लिया, या मुनि महाराज को सुन लिया, या मौलवीजी को सुन लिया, या पादरीजी करे सुन लिया तो समझना है धर्म को खूब जान गया। धर्म को कहां जान लिया? केवल मान रहा है, जाना नहीं है। जानने और मानने में जमीन और आसमान को अंतर है। मानकर कुछ नहीं मिलेगा। जानकर कुछ नहीं मिलेगा।

जिस दिन अपने भीतर की सच्चाई अनुभूति पर उतरने लगेगी उस दिन जान लेगा कि यह धर्म है और यह अधर्म है। धर्म धारण करते ही देखेगा कितनी शांति मिलती है। धर्म छोड़ते ही देखेगा कितनी अशांति मिलती है, बैचेनी मिलती है। तब धर्म धारण करना आसान हो जाएगा।

अब बुद्धि से इतना तो समझ लिया कि धर्म धारण करना चाहिए। हिंदू धर्म नहीं, बौद्ध धर्म नहीं, जैन धर्म नहीं, जो सार्वजनीन धर्म है; विश्व का विधान है, प्रकृति का स्वभाव है, निसर्ग का नियम है उसको धारण करना है। अब आगे समझेगें कि धर्म कैसे धारण करें?

अगला कदम कैसे उठायें? इसे जीवन में कैसे अपनायें?

3 समाधि : धर्म का दूसरा चरण

धर्म-गंगा का प्रवाह देख रहे हैं। धर्म-गंगा का कल कल निनाद सुन रहे हैं। खूब समझते हैं कि धर्म क्या है? धर्म की गंगा क्या है? धर्म के नाम पर जो धोखा चलता है, धर्म के नाम पर जो भ्रंति चलती है, उससे बाहर निकलें। धर्म की गंगा सावजनीन होती है। किसी एक संप्रदाय की नहीं होती, किसी एक वर्ग विशेष की नहीं होती, किसी एक देश विदेश की नहीं होती। गंगा सब की होती है। जो चुल्लू भर पानी पी लेगा, वही अपनी प्यास बुझाने का काम शुरू कर देगा। तट पर बैठ रह जायेगा तो गंगा के प्रवाह को देखता ही रह जायेगा। उसके कल-कल निनाद को सुनता ही रह जायेगा। अपनी प्यास नहीं बुझा पायेगा।

परंतु आरम्भ तो ऐसे ही होता है। पहले गंगा के तट पर आकर कोई बैठता है। देखता है यह गंगा के तट पर कैसा है? शुद्ध है कि नहीं? स्वच्छ है या नहीं? इसे पीने से कोई हानि तो नहीं होगी? समझदार आदमी को समझकर ही जल पीना चाहिए। और यदि समझ

में आ जाये तो पीना ही चाहिए। प्यासा आदमी गंगा के तट पर आए और प्यासा ही रह जाय तो अभागा रहा।

गंगा कैसी है? धर्म की गंगा जीवन जीने की कला है। कैसे स्वयं सुख-शांति का जीवन जीयें और कैसे दूसरों के लिए भी सुख-शांति की ही बातावरण निर्माण करें। अपने आप को हिंदू कहना हो हिंदू कहें, मुसलमान कहना हो मुसलमान कहें, जैन कहना हो जैन कहें, बौद्ध कहें, ईसाई कहें- चाहे जिस नाम से पुकारें, पर धर्म को जीवन जीयें। और धर्म का जीवन जीने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने शरीर और वाणी से ऐसा कोई नहीं करें जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती हो, उन्हें पीड़ा पहुंचती हो, या उनकी हानि होती हो।

जो धर्म की शुद्ध गंगा को समझने लगता है, वह बड़ी जल्दी यह भी समझने लगता है, कि अगर मैं शरीर और वाणी से कोई दुष्कर्म कर के समाज के अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग नहीं कर रहा, उनको पीड़ा नहीं पहुंच रहा, तो उन पर कोई एहसान नहीं कर रहा हूं। ऐसा खूब समझने लगेगा कि मैं अपने आप पर एहसान कर रहा है। यदि धर्म समझने लगा तो इस बात को भी खूब समझने लगेगा कि जब-जब मैं अपने शरीर से या वाणी से कोई भी ऐसा काम करता हूं जिससे अन्य प्राणियों को कष्ट पहुंचता है यानि - हत्या करता हूं या चोरी करता हूं या व्यभिचार करता हूं या झूठ बोलता हूं या कड़वी बात, चुगली की बात, निंदा की बात या निकम्मी बात बोलता हूं अथवा नशापता कर के उपद्रव करता हूं- तो दूसरों को कष्ट देता हूं, पर उससे पहले अपने आप को कष्ट देने लगता हूं। पहले अपने आप को पीड़ा पहुंचाने लगता हूं, क्योंकि शरीर का ऐसा दुष्कर्म, वाणी को ऐसा दुष्कर्म कोई व्यक्ति तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि अपने मन में कोई विकार न जगा है। क्रोध जगायेगा- कोई न कोई विकार जगायेगा तब शरीर से ऐसा काम करेगा जा अन्य प्राणियों को कष्ट वाला होगा: तब वाणी से ऐसा कोई काम करेगा जा अन्य प्राणियों को कष्ट देने वाला होगा।

दुष्कर्म करने से पहले अपने मानस में विकार जगाना होता है और जैसे ही अपने मानस में विकार जगाता है, बड़ा व्याकुल हो जाता है। बड़ा अशांत हो जाता है। यह हो ही नहीं सकता कि कोई व्यक्ति क्रोध भी जगाए और भीतर बड़ी शांति भी महसूस हो। यह होने वाली बात नहीं है। यह कुदरत का नियम नहीं है, यह प्रकृति का नियम नहीं है। कुदरत के नियम बिल्कुल बधे-बधाये हैं; सार्वजनीन हैं; सावदेशिक हैं, सार्वकालिक हैं। सब समय, सब जगह और सब पर एक जैसे लागू होते हैं। सार्वकालिक हैं। सब समय सब जगह और सब पर एक जैसे लागू होते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन में क्रोध जगाता है, तब बड़ा अशांत हो जाता है। द्वेष जगाता है, बड़ा अशांत हो जाता है। ईर्ष्या, वासना, भय अहंकार- कोई भी विकार जगाता है, मन की समता खो देता है। मन का संतुलन खोया कि दुखियार

हो जाता है। जब-जब कोई व्यक्ति शील सदाचार का जीवन जीना छोड़कर दुःशील, दुराचार, का जीवन जीता है, तो पहला आक्रमण अपने आप पर करता है। पहले अपने आप को दुखी बनाता है, फिर दूसरों को दुखी बनाने लगता है। जिस व्यक्तिक को धर्म समझ में आने लगता है, उसे यह बात बड़ी जल्दी समझ में आने लगती है।

पुब्बे हनति अन्तानं, पच्छ हनति सो परे।

- पहले अपना हनन करता है, फिर किसी अन्य का हनन करता है।

जो व्यक्ति धर्म के नाम पर इसी बात में उलझा है कि यह हिंदू धर्म है, यह बौद्ध धर्म है, यह जैन धर्म है, यह मुस्लिम धर्म है, यह ईसाई धर्म है, यह सिक्ख धर्म है, वह वेचारा उलझा ही रह जायेगा। सारे जीवन उलझा रह जायेगा। ऊपर से पाठ जरूर करेगा- हमें हत्या नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, व्यभिचार नहीं करना चाहिए, झूठ बोलना नहीं चाहिए, नशा नहीं करना चाहिए। खूब पाठ करेगा, पर होश नहीं होगा कि क्या पाठ कर रहा है! कभी-कभी दुराचार से बचेगा भी, लेकिन होश नहीं होगा कि क्यों बच रहा है!

जिस दिन धर्म को समझने लगेगा उस दिन सही माने में स्वार्थी बन जायेगा। धर्म हमें स्वार्थी बनाता है। जो धर्मवान होगा वह बड़ा स्वार्थी होगा। लेकिन वह समझेगा कि सही अर्थों में कि मेरा स्वार्थ कहां समाया हुआ है? मेरा स्वार्थ किस बात में है? मेरा स्वार्थ इस बात में है कि अपने चित्त को मैला न होने दूं, उसमें विकार न जगने दूं, अन्यथा मेरा स्वार्थ नष्ट हो जायेगा। जैसे ही मेरे चित्त में विकार जागा, कि मेरी हानि होने लगी। मेरी अर्थ-सिद्धि नहीं हुई। मैं बड़ा व्याकुल हो गया, अंशात हो गया क्योंकि कुदरत ने मुझे दंड देना शुरू कर दिया। और जैसे ही विकारों से मुक्त हुआ, मेरा अर्थ सिद्ध होने लगा। कुदरत की मुझ पर बड़ी कृपा होने लगी और मुझे आंतरिक शांति का पुरस्कार मिलने लगा, आंतरिक सुख को पुरस्कार मिलने लगा। अब मैं अपने को हिंदू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान कहता रहूं, उससे कोई अंतर नहीं पढ़ता।

कुदरत के कानून को, विश्व के विधान को, निर्सग के नियम को, ऋत को भारत की पुरानी भाषा में धर्म कहा जाता था। अन्तनो पन सभावं धारेती ति धम्मो। अपना स्वभाव धारण करना ही धर्म है। बर्फ का स्वभाव है, शीतल होना और शीतल करना। अग्नि का स्वभाव है जलना और जलाना। इसी प्रकार विकारों का स्वभाव है व्याकुल होना और व्याकुल करना। विकार-विहीन निर्मल चित्त का स्वभाव है शांत होना और शांत करना। ये प्रकृति नियम हैं। हमारे देश का ऋषि, मुनि, सदगुरु, महापुरुष इसी सत्य का अनुसंधान करने के कारण ही ऋषि महापुरुष बने, सत्य पुरुष बने, बुद्ध बने, अरहंत बने, स्थितप्रज्ञ बने, अनासक्त बने, जीवनमुक्त बने। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार कर लिया।

कुदरत ने , प्रकृति ने या यों कहें परमात्मा ने मनुष्य को इतनी बड़ी शक्ति दी है कि यह अपने अन्दर सच्चाई को देखते हुए धर्म का दर्शन कर सकता है। कुदरत के नियमों का दर्शन कर सकता है और अपने आप को इन नियमों के अनुसार ढाल सकता है। यह काम कोई पशु, पक्षी, सृप नहीं कर सकता। यह काम कोई पशु, कीट-पतंग प्रेत प्राणी नहीं कर सकता। प्रकृति ने मनुष्य काम मनुष्य को छोड़ कर और कोई नहीं कर सकता । प्रकृति ने मनुष्य को अपने भीतर देख सच्चाई देख सकने की इतनी बड़ी शक्ति दी है।

निसर्ग के नियमों को समझ लेने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शील-सदाचार का जीवन जीना चाहिए। परंतु कैसे जीयें? हत्या नहीं करनी है, पर हत्या करने से कैसे बचें? चोरी नहीं करनी है, पर चोरी करने से कैसे बचें? व्यभिचार नहीं करना है, पर व्यभिचार करने से कैसे बचें? झूठ नहीं बोलना है, धोखा नहीं देना है, कड़वी बात नहीं कहनी है, नशापता नहीं करना है, पर इनसे कैसे बचें?

अगर धर्म केवल उपदेश देकर रह जाता- ऐ दुनिया के लोगो, तुम्हें हत्या नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, तुम्हें नहीं करनी चाहिए, वह नहीं करना चाहिए- वह लोग इस कान से सुनते , उस कान से निकाल देते। चिंतन-मनन से समझ भी लेते कि ऐसा नहीं करना चाहिए फिर भी समय आने पर वैसा ही करते।

एक शराबी अच्छी तरह समझता है कि मुझे शराब नहीं पीनी चाहिए। इससे बड़ी हानि होती है- मेरी भी होती है, मेरे परिवार की भी होती है। आर्थिक हानि भी होती है, चरित्र की भी हानि होती है। हर तरह से हानि होती है। लेकिन समय आता है तो पी लेता है। जुआरी समझता है कि मुझे जुआ नहीं खेलना चाहिए। बड़ी हानि होती है। पर समय आता है, तो जुआ खेल ही लेता है। व्यभिचारी समझता है कि मुझे व्यभिचार नहीं करना चाहिए पर समय आता है तो व्यभिचार कर ही लेता है। हर दुष्कर्म करने वाला बुद्धी के स्तर पर हमेशा समझ लेता है क्योंकि धर्म की बातें बहुत सुनी हैं, पढ़ी हैं उनका चिंतन बाद में किया है। अच्छी तरह समझता है कि मुझे यह चिंतन नहीं करना चाहिए। फिर क्यों कर लेता है, ? क्योंकि बिचारे का मन बस में नहीं है। मन पर उसका अधिपत्य नहीं है, मिल्कियत नहीं है। वह अपने मन का मालिक नहीं है। अपने मन को गुलाम हो गया है। भारत पर जो ऋषि हुए, जो बुद्ध हुए, अंरहत, स्थितप्रज्ञ हुए, उन्होंने अगला कदम सिखाया- मन को वश में करना सीखा। अपने मान का मालिक बन। मन को एकाग्र कर।

मन को वश में करना

इधर-उधर भटकने वाला मन हमारे वश में नहीं है। बंदर की तरह कभी इधर कभी उधर दौड़ता है। कितना चपल है। सचमुच हमारे वश में नहीं है। इसको वश में करना सिखना है।

बहुत तरीके होते हैं जिनके आधार पर मन को वश में करने का तरीका सीखा जा सकता है। बहुत आलंबन होते हैं। एक बहुत लोकप्रिय आलंबन है कि मन ही मन में किसी नाम का जाप किया जाय। किसी देवी का, किसी देवता का, ईश्वर का, ब्रह्म का, अल्लाह का, किसी संत का, किसी महापुरुष का। जिस किसी के मन में श्रद्धा हो, आंख बंद कर के बार-बार उसका नाम जपा जाए। बार-बार उसका नाम अपने मन में एकाग्र होता चला जायेगा। जैसे बच्चा बार-बार लोरी सुनता है। लोरी सुनते सुनते उसे निंद आ जाती है। इसी प्रकार एक शब्द बार बार , बार बार दोहराते जायेगे तो मन शांत हो ही जायेगा।

जिसके प्रति श्रद्धा है उसका नाम दोहराना आसान होता है क्योंकि साथ में यह कह दिया कि अमुक व्यक्ति के जाप के नाम से तेरे सारे पाप कट जायेगे। अतः इस श्रद्धा से वह बार बार नाम जापेगा। पर सच्चाई यह है कि कोई भी नाम बार बार जापने से मन शांत होगा ही। यह घड़ी पहन रखी है मन ही मन बार बार घड़ी घड़ी ही बोलता चला जाय , बोलता चला जाय, मन शांत हो ही जायेगा। उसी प्रकार जब हम किसी देवी देवता का नाम बार बार जापेगे तो मन एकाग्र हो जायेगा।

एक और तरीका बहुत प्रचलित है। जिस किसी देवी, देवता ईश्वर, ब्रह्म, संत महापुरुष पर हमें बहुत श्रद्धा है, उसका कोई चित्र देखे उसकी कोई मूर्ति देखे। खुली आंखों से थोड़ी देर वह चित्र देखे , वह मूर्ति देखे, फिर आंख बंद कर के कल्पना करें। यो बार बार करते करते एक समय ऐसा आयेगा कि बंद आंखों के सामने वह मूर्ति , वह चित्र , वह आकार प्रकट होने लगेगा। और क्योंकि उसके प्रति बहुत श्रद्धा है, मन उसमें एकदम समाहित होने लगेगा, लीन होने लगेगा, एकाग्र होने लगेगा।

ऐसे अनेक तरीके हैं। हमारे देश के महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न तरीके ढूँढे , जिनसे मन वंश में आ सके । लेकिन जिससे विपश्यना के रास्ते चलना है उसको इन सब से बचना होगा। किसी रूप की, किसी आकृति की कोई कल्पना नजदीक न आने पाये। यह सारा को सारा मार्ग अपने बारे में सच्चाई की खोज करने का मार्ग है और इस खोज में मन अपने आप एकाग्र होने लगेगा। केवल एकाग्र ही नहीं, निर्मल भी होने लगेगा। और केवल मानस के ऊपरी-ऊपरी स्तर पर ही नहीं, मानस की गहराई तक निर्मल होता चला जायेगा।

शब्द का प्रयोग क्यों नहीं ?

किसी शब्द का प्रयोग क्यों नहीं करें ? क्योंकि हर शब्द की अपनी एक तंरग होती है। यदि हम कोई एक शब्द बार बार दोहराएंगे तो उस शब्द की अपनी तंरगो द्वारा उत्पादित सच्चाई प्रकट होन लगेगी और हमारा सारा को सारा मानस और शरीर इस कृत्रिम सच्चाई में सराबोर हो जायेगा। उसमें समा जायेगा। कुछ अंशो में इसका लाभ भी होगा। हमें लगेगा कि एक कवच मिल गया जिससे बाहर की तंरगो हम पर आक्रमण नहीं कर सकती।

यह कल्याण की बात हुई, लेकिन पूर्ण कल्याण की बात इसलिए नहीं हुई कि हम अपनी भीतर की स्वाभाविक तरंगों को नहीं देख पायेगे। क्रोध आता है तब हमारे भीतर कैसी तरंगों को नहीं देख पायेगे। क्रोध आता है तब हमारी भीतर कैसी तरंगें उठती हैं। वासना जागती है तब कैसी तरंगें चलती हैं? भय जागता है तब कैसी तरंगें चलती हैं? हमारे मन में जब अहंकार या अन्य कोई विकार जागता है तब शरीर और मन ही क्या अवस्था होती है? उसे देखेंगे तभी उसके बाहर निकलने को रास्ता मिल सकेगा। यदि मन पर कृत्रिम तरंगें थोपना शुरू कर देंगे तो यह प्राप्त नहीं होगा क्योंकि सच्चाई नहीं देख पायेगे।

एक और कारण यह भी है कि सारा धर्म सार्वजनिक है। सारी विद्या सार्वजनिक है, क्योंकि हमारा रोग सार्वजनिक है। राग का उत्पन्न होना, द्वेष का उत्पन्न होना और उसकी वजह से व्याकुल हो जाना- यह केवल हिंदुओं को रोग नहीं, केवल बौद्धों को रोग नहीं, यह तो सब को रोग है। सार्वजनिक रोग का इलाज हमेशा सार्वजनिक होता है, संप्रदायिक नहीं हो सकता। अगर हमने नाम का आलंबन दिया और कहा है, राम राम राम बोलते जाओ, तो कोई मुसलमान भाई होगा तो राम राम राम कैसे बोलेगा? वह कहेगा हम तो अल्लाह अल्लाह बोलेगे। कोई ईसाई बोलेगा हम तो ईशा ईशा बोलेगे। कोई बौद्ध कहेगा हम तो बुद्ध बुद्ध बोलेगें। कोई जैनी कहेगा हम तो जिन जिन बोलेगें, महावीर महावीर बोलेगें। तो भिन्न-भिन्न इलाज हो गया, सार्वजनिक कहां रहा?

यदि हमारा लक्ष्य चित्त को एकाग्र करना ही हो तो अवश्य कोई एक शब्द मन ही मन दोहराते जायं मन एकाग्र हो जायेगा। किसी एक कल्पना का जिसके प्रति कड़ी आस्था है, श्रद्धा है, उसका चित्तन बार बार करते जायं, मन एकाग्र होता चला जायेगा। लेकिन हमारा लक्ष्य चित्त को नितांत निर्मल करना है। इसलिये विस्पश्यना -शिवरों में शब्दों को प्रयोग मना किया गया। भले उसका अपना लाभ क्यों न होता हो, फिर भी विस्पश्यना के शिविर में शब्दों का प्रयोग मना किया गया है बरना किसी बिच में धर्मशाला में जाकर रुके रह जायेगें। अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पायेगें, अंतिम सीमा तक नहीं पहुंच पायेगे। किसी मान्यता का या किसी अन्य विधि का विरोध नहीं है। लेकिन इस विधि को अच्छी प्रकार समझने के लिए यह जान चाहिए कि हम इस विद्या में अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ेगे।

अभ्यास कैसे करे ?

पालथी मार कर बैठ गये। आंखें बंद कर ली। मुंह बंद कर लिया। चुपचाप बैठे हैं। शरीर से कोई काम नहीं हो रहा क्योंकि हम बैठे हैं। मुंह से कुछ नहीं बोल रहे। अब देखे, क्या सच्चाई प्रकट हुई? अपने बारे में इस समय क्या सच्चाई अनुभव हो रही है? इस साढ़े तीन हाथ की काया में इस क्षण क्या घटना घट रही है? तो हर आदमी को जो पहली घटना महसूस होगी वह यह कि श्वास चल रहा है। श्वास भीतर आता है कि श्वास

आ रहा है। इसकी कल्पना नहीं कर रहे। श्वास आ रहा है यह हमारी मान्यता की बात नहीं है, पुस्तको की बात नहीं है। यह तो हमारी अनुभूति पर उतर रहा है। श्वास भीतर आया और आगे बढ़ेगे तो उससे सूक्ष्म ,सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम सत्य तक पहुंच जायेगे। इस शरीर और चित्ता के बारे में जो सूक्ष्मतम सच्चाई है, वह अनुभूति पर उतर जायेगी।

फिर उसके परे की क्या सच्चाई है उसे जानेंगे। पुस्तको में बहुत पढ़ा कि शरीर और चित्त का सारा क्षेत्र अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। पुस्तकों में पढ़ा, प्रवचनों में सुना पर अनुभूति पर नहीं उतरा। वह अनुभूति पर उतरते जायेगा। जब उसे पार कर जायेगे तब उस अवस्था का अनुभव हो जायेगा, उसका साक्षात्कार हो जायेगा जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, अमृत है। उसे आत्मा कहें, परमात्मा कहें, परमात्मा कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें या और कुछ कहें। पर उस नित्य अवस्था का साक्षात्कार होना चाहिए। अभी तक अनित्य क्षेत्र को तो हमने पुरा अनुसंधान किया नहीं, अनित्य को तो पूरा खोजा नहीं, अनित्य की पूरी भूमि को अनुभूति पर उतारा नहीं और कल्पना नित्य की कर रहे हैं। हमारी अनुभूति से जो इतनी दूर है, उसकी हम कल्पना करेगे तो धोखे में पड़ जायेगे। इसलिये जिस क्षण जो सच्चाई प्रकट हुई, उसके सही स्वभाव को समझते हुए आगे बढ़ेगे तो उस नित्य अवस्था तक पहुंच ही जायेगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन इस समय जो सच्चाई प्रकट नहीं हुई उसका आरोपण करने लगे या अपने किसी मान्यता का आरोपण करने लगे तो कही न कही अटक जायेगे। आगे नहीं बढ़ पायेगे। इसलिए श्वास आ रहा है तो आ रहा है, जा रहा है तो जा रहा है, इतना भर जानेगे। लंबा है तो लंबा है छोटा है तो छोटा है, इतना ही जानेगे।

केवल जानेंगे ,कुछ करेंगे ही नहीं। श्वास लंबा है तो उसे छोटा करें, छोटा है तो उसे लंबा करे। यहां रोके, वहां रोके। यह अलग विद्या है। प्राणायाम की अलग विद्या है जिसके अपने लाभ होते हैं। भारत में बहुत प्रकार की साधना विद्या चली। सब अपना अपना लाभ लेकर आई। उनसे कल्याण हुआ। आज भी कल्याण होता है। उनकी कोई निंदा नहीं। लेकिन जिसे इस विधि को अपनाकर देखना है, उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सांस की कसरत न करने लगे। कही सांस पर नियंत्रण नहीं करने लगे। कर्ताभाव बिल्कुल न हो, भोक्ताभाव बिल्कुल न हो, केवल द्रष्टाभाव हो। घटना घट रही है और उसे देख रहे हैं। जैसे कि हम नदी किनारे बैठ रहे हैं और नदी वह रही है और हम उसे देख रहे हैं। उसके बहने में हमारा कोई हाथ नहीं। धीरे चलती हो तो हम उसे तेज नहीं चला सकते। तेज चलती हो तो हम उसे धीरे नहीं कर सकते। जैसे चलती है वैसे चलती है। हम तो केवल द्रष्टा की तरह देख रहे हैं। इसी प्रकार नाक के दरवाजे पर हमने अपने मन को टिकाया और देख रहे हैं—सांस की यह नदी चल रही है, यह प्रवाह चल रहा है— आता है जाता है, आता है जाता है। हम तो केवल दुष्प्रभाव को जान रहे हैं।

बात तो बड़ी छोटी से है, पर दरबाजा खोल देगी- मुक्ति का दरबाजा खोल देगी। कैसे खोल देगी? इसे समझें-

हम क्या करने लगे! श्वास आता है, जाता है, उसे देख रहे हैं यानी जान रहे हैं। हमें कुछ करना नहीं है। श्वास तो अपने आप आता है, अपने आप जाता है। बाई नासिका से आया तो जान लिया बाई नासिका से आया। दाई से गुजरा तो जान लिया दाई से गुजरा। दोनो से गुजरा तो जान लिया दोनो से गुजरा। हमने केवल जाना और कुछ नहीं किया।

इसमें थकान की क्या बात , इसमें कष्ट की क्या बात? दुनिया का सबसे अच्छा और आसान तरीका है। हम बैठे हैं और जो रहा है, उसे देख रहे हैं। सांस की घटना घट रही है और हम देख रहे हैं। कहना बड़ा आसान है पर करना बहुत कठिन। कभी दस दिन के शिविर में बैठे तो जानेगे। जी घबरा उठेगा। एक सांस भी नहीं देख पाये कि मन भाग गया। तो सिखाने वाला समझायेगा कि नहीं, गुस्सा नहीं करना है, सच्चाई को देखना है। इस क्षण की यह सच्चाई है कि मेरा मन भाग गया। बस मुस्करा कर उसे स्वीकार करना है। इस क्षण मेरा मन भाग गया। अच्छा, फिर शुरू करते हैं।

जीवन-व्यवहार में जब मनचाही नहीं होती है तब तनाव पैदा करते हैं, क्रोध पैदा करते हैं, द्वेष पैदा करते हैं और गांठे बाधते हैं। उसी को सुधारने आये हैं। लेकिन साधक अज्ञानता में साधना के नाम पर उन्ही विकारों को बढ़ाने लगाता है। मन भाग जाता है, तो व्याकुल हो उठता है- अरे मेरा मन भाग गया रे। मेरा मन तो टिकता ही नहीं रे! व्याकुल होकर सिखाने वाले गुरु के पास आता है- 'गुरुजी मेरा मन तो टिकता ही नहीं। मैं बैठता रहा, पर मन बहुत भागा। आप ही कुछ कीजिये, कुछ कृपा कीजिये। “ गुरु क्या कर सकता है? अगर मन भाग गया है तो सिर्फ इतना जानना है कि मन भाग गया! इस क्षण की सच्चाई को स्वीकार करना है। रोना क्यों? स्वभाव पलटना है। लेकिन पुरानी आदत है इसलिये रोयेगा। फिर होश आयेगा। फिर रोयेगा, फिर होश आयेगा। यों देखते देखते एक दिन बितेगा, दो दिन बितेगे। तब तक कुछ और बातें उजागर होने लगेगी।

एक बात तो यह उजागर होगी कि यह मेरा मन जो बार बार भाग जाता है वह कंहा भागता है। कोई डायरी लिखे तो लिख ही न पाये कि कितनी बातों की ओर भागता है। साधना करते समय डायरी भी नहीं लिखने देते। पर साधक देखेगा कि मन के भागने के दो ही मुख्य क्षेत्र हैं, तीसरा कोई क्षेत्र नहीं। दो क्षेत्र क्या हैं? एक तो है भूतकाल को क्षेत्र दूसरा है भविष्य का क्षेत्र। जरा ध्यान से देखेगे तो पता चलेगा कि कोई पुरानी बात ध्यान में आई। ऐसा हुआ था वैसा हुआ था। उसमें लोट-पलोट लगाने लगे। फिर होश आया- कहा चला गया रे? ओहो, भूतकाल में चला गया। ऐसा हुआ था ऐसा हुआ था। उसने मेरा अपमान किया था। उसने मुझे गाली दी थी। उस समय तो कुछ जबाब देते नहीं बना। अब

गाली देकर देखे- यह जबाब दूंगा, ऐसा करूंगा वैसा करूंगा। फिर कोई पुरानी बात याद आई। ऐसा हुआ था, ऐसा हुआ था। फिर ऐसा होगा, ऐसा होगा। ऐसा हो जाये ता अच्छा ऐसा न हो तो अच्छा।

अपने मन को जांच कर, द्रष्टाभाव से देखेंगे तो बात समझ में आने लगेगी। भोक्ताभाव से देखेंगे उसमें लोट-पलोट लगायेंगे, देख नहीं पायेंगे। मंत्र का जाप करेगे तो मन उस मंत्र पर टिक जायेगा। तब अपना स्वभाव कंहा देख पायेंगे? अपना धर्म कहां देख पायेंगे? अपनी प्रकृति कंहा देख पायेंगे? इसीलिए कहते हैं कोई शब्द आने न पाये। कोई रूप या आकृति आने न पाये। एक वैज्ञानिक की तरह हमें सत्य को अनुसंधान करना है। जो सच्चाई सामने आ रही है उसके टुकड़े कर कर के, उसका विभाजन कर कर के, उसका विश्लेषण कर कर के, एक वैज्ञानिक की तरह हमें समझना है कि यह सांस क्या है? मेरा मन क्या है? कैसे काम करता है? मेरा मन कंहा भागता है? समझ में आने लगता है कि जब देखो तब भूतकाल में रमण करता है अथवा भविष्य काल में रमण करता है। अनुभूति से यह बात समझ में आ जाती है कि मन वर्तमान में रहना नहीं चाहता।

फिर धीरे धीरे यह बात भी समझ में आ ही जायेगी कि जीना तो वर्तमान में होगा। भूतकाल में कैसे जीयेगे? जो क्षण बीत गये ये सदा के लिये बीत गये। हम दुनिया की सारी संपदा देकर भी उसको वापस लाना चाहे, तो नहीं ला सकते। वह तो हमेशा के लिये गया। उसमें कैसे जीयेगे? और भविष्य का क्षण जब वर्तमान बनेगा तब जीयेगे। अभी उसमें कैसे जीयेगे? जीना तो है वर्तमान में पर मन की आदत तो ऐसी बना ली कि जब देखो तो भूत में रमण करें, जब देखो तो भविष्य में रमण करें। उसको वर्तमान में जीना नहीं आता। लेकिन इस पर गुस्सा नहीं करेगे बल्कि मुसकरायेगे- अच्छा तेरी ऐसी हालत है! तेरी यह आदत है इसलिए तू इतना व्याकुल रहता है, बैचन रहता है। तुझे जीना नहीं आता। वर्तमान को देख। वर्तमान की सच्चाई यह है कि श्वास आ रही है, श्वास जा रहा है। श्वास बाई नासिका से गुजरता है या दाई से। बस इसी को देखता जा।

पुरानी आदत है, भागेगा। फिर होश जागेगा तो सांस पर ले आएंगे। फिर भागेगा, फिर ले आयेगे। यों करते-करते एक बात और समझ में आने लगेगी। जब वह भूतकाल में रमण करता है या भविष्य में रमण करता है, तो मन में कैसी बाते उठती है। या तो कोई बड़ी प्रिय बात याद आयी या बड़ी अप्रिय बात। भविष्य का चिंतन होगा तो, या तो बड़ा प्रिय होगा या अप्रिय।

राग-द्वेष का उदगम

जैसे ही कुछ सुखद लगा वैसे ही मन का एक हिस्सा प्रतिक्रिया करने लगा- ऐसा तो और चाहिए! ऐसा तो और चाहिए। ऐसा तो बार बार हो! चाहिए चाहिए चाहिए की रट

लग गयी। और जब जब मन मैं कोई अप्रिय बात आई और वह दुखद लगी तो मन को एक हिस्सा कहने लगा-नहीं चाहिए यह तो नहीं चाहिए! यह बिल्कुल न हो! तो नहीं चाहिए, नहीं चाहिए, की गुहारनी चलने लगी। यह जो चाहिए-चाहिए की प्रतिक्रिया चलने लगी, भारत की पुरानी भाषा में उसे राग कहते थे, लोभ कहते थे, अशक्ति कहते थे। और जो नहीं चाहिए नहीं चाहिए की प्रतिक्रिया चलने लगी, भारत की पुरानी भाषा में उसे द्वेष कहते थे, दौर्मनस्य कहते यें।

बात समझ में आ गयी। अपने मन का स्वभाव देख लिया। मेरा मन प्रतिक्षण या तो राग रंजित रहता है या द्वेष-दूषित रहता है। या तो किसी बात को सुखद मान कर राग पैदा करता है या दुखद मान कर द्वेष पैदा करता है। यह सच्चाई सामने आ रही है। यह धर्म सामने आ रहा है। इस समय मेरे चित्त का ऐसा स्वभाव है। जब देखो तब राग पैदा करता है और इसी कारण बड़ा व्याकुल रहता है। अपनी व्याकुलता समझ में आने लगी।

यह बहुत नन्हा सा कदम हैं इसके आगे की बात बात में समझेगें। अभी तो इतना ही जाने की सांस को जैसा है वैसा देखने से केवल सांस के बारे में ही नहीं ,केवल शरीर के बारे में ही नहीं बल्कि अपने चित्त के बारे में भी जानकारी होनी शुरू हो जाएगी कि इस सांस का केवल शरीर से ही नहीं, हमारे चित्त से भी बहुत गहरा संबंध है। केवल फेफड़ों की वजह या दिल की वजह से यह सांस नहीं आता जाता रहता। इसका हमारे मन से भी बहुत गहरा संबंध है। यह बात अनुभव से समझ में आने लगेगी।

सांस को देखते-देखते कोई पुरानी बात याद आई और उसको याद कर के गुस्सा आया। देखेंगे, गुस्सा आते ही सांस ने अपनी स्वाभाविकता खो दी। भय जागा कि सांस ने अपनी स्वाभाविकता खो दी। श्वास जरा तेज हो गया, भारी हो गया। हम कभी अपनी और देखते ही नहीं, इसलिए हमको पता नहीं लगता कि हमारे भीतर क्या हो रहा है? हम तो बाहर ही देखते हैं। भीतर कभी अपने आप को देखा नहीं। भीतर देखने का कोई काम किया भी तो कल्पना का ध्यान किया। वास्तविकता को देखने का काम कभी नहीं किया। देखेंगे तो पता लगेगा कि जब-जब मेरे मन में विकार जागता है, श्वास अपनी स्वभाविक गति खो देता है और जैसे ही विकार दूर हो जाता है, श्वास फिर स्वाभाविक गति में आ जाता है। तब समझ में आएगा कि इस श्वास को देखने का काम महापुरुषों ने क्यों बताया। अपने मन के विकारों को देखने लगेगे। अपने विकारों के उद्यम को देखने लगेगे और उनसे छुटकारा पाने के तरीके को समझने लगेगें।

यथाभूत जैसा है वैसा देखने का काम शुरू करें तब यह सारा विज्ञान समझ में आ जायेगा। परंतु जैसा है वैसा नहीं देखेंगे और उसके ऊपर कुछ आरोपित करने लगेगें तो कुछ समझ में नहीं आयेगा। हमारी यह मान्यता, हमारी वह मान्यता। अच्छी और बिल्कुल सही

हो तो भी, अथवा गलत हो तो भी , उसको एक ओर रखे। इस समय मान्यता का ध्यान नहीं कर रहे। इस समय हम सत्य का ध्यान कर रहे हैं, जो अनुभूति पर उतर रहा है। इस समय हम धर्म का ध्यान कर रहे हैं, जो उसका स्वभाव है, जो उसकी प्रकृति है। इस शरीर की , इस चित्त की क्या प्रकृति है? उसको हम अनुभूतियों से जानने का काम कर रहे हैं। एक शोध-वैज्ञानिक की तरह हमको अनुसंधान करना है। अपने बारे में सच्चाई जाननी है।

दार्शनिक मान्यताएं अपनी जगह है। यह मान्यता ठीक होगी या वह मान्यता ठीक होगी! अभी इस उलझन में क्यों पड़े? इन मान्यताओं को एक ओर रखे । इन्हे बीच में नहीं आने दे।

जब कहा गया कि केवल श्वास को देखो- जैसे आता है, जैसे जाता है, इसके स्वभाव को देखो। तो श्वास सब का एक जैसा है। श्वास न हिन्दू है, न मुस्लिम है, न बौद्ध है, न जैन है, न ईसाई है। और यह हमारा चित्त , जो पागल की तरह प्रतिक्रिया करता है, विकार जगाता है, यह भी न हिन्दू है, न बौद्ध है, न ईसाई है, जैन है।

प्रकृति के नियमों को एक वैज्ञानिक की भांति जांचने के लिए बैठे हैं। हमको किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं होना है कि आज तक हम अपने को जैन कहते थे, कल से बौद्ध कहने लगे या बौद्ध कहते थे, कल से हिन्दू कहने लगे, मुसलमान कहने लगे। इससे क्या मिल जायेगा? अपने को चाहें जिस नाम से पुकारे। क्या अंतर पड़ता है? हमें अपने चित्त के स्वभाव को पलटना है। चित्त को वह स्वभाव जो हमेशा मनचाही को देखकर उसके प्रति आसक्ति पैदा कर लेता है, राग पैदा कर लेता है; चित्त का वह स्वभाव जो अन चाही को देखकर द्वेष पैदा कर लेता है; उस स्वभाव को कैसे पलटे? उस स्वभाव को नहीं पलटेंगे तो दुखी ही रहेंगे। अपने आप को हिन्दू कहकर भी दुखी रहेंगे, जैन कहकर भी, मुस्लिम कहकर भी, बौद्ध कहकर भी। हर हालत में दुखी रहेंगे।

मानस का स्वभाव पलटें

जब यह स्वभाव पलट जाता है तब हमारे मन में विकार नहीं जागता। अब बाहर की घटना चाहे जैसी घटे, हम विकार नहीं जगाते। हम विकार नहीं जगाते तो दुखी नहीं होते। जिसने हमारा अपमान किया वह दुखी होता। जिसने हमें गली दी वह स्वयं दुखी हुआ क्योंकि उसने क्रोध जगाया। क्रोध जगाया तभी तो गाली दी। उसने अपने मन में विकार जगाया तभी तो हमारा अपमान किया। यह उसका रोग है। यह उसकी समस्या है। इसे हम अपना रोग क्यों बनाये? अपनी समस्या क्यों बनाये? बदले में हम क्यों विकार जगायें? हम क्यों दुखी हो? हम तो निर्विकार रहेंगे। सुखी रहेंगे। स्वस्थ रहेंगे।

कहना बड़ा आसान है, पर करना बड़ा मुश्किल है। ऐसा कर सकने के लिए बहुत अभ्यास चाहिए। कोई विधि चाहिए। इस देश की यह एक कल्याणकारी विधि है। इतनी महान अध्यात्मिक विद्या है जो सामान्य से सामान्य व्यक्ति का जीवन बदल देती है, उसके जीवन की धारा बदल देती है। अब फिर भारत में सुलभ हुई। इसका लाभ लेना चाहिए। घबरायें नहीं कि यह बौद्धों की है या जैनियों की। यह धर्म की विद्या है। सार्वजनिक धर्म की है, किसी एक संप्रदाय की नहीं। धर्म सब का होता है। हमको अपने मानस का स्वभाव पलटना है, जैन, बौद्ध, मुस्लिम या ईसाई है तो पलटना है।

बीमार होते हैं तो क्या करते हैं? औषधि लेने जाते हैं। मलेरिया हो गयी और किसी के पास औषधि लेने के लिए गये। उसने हमें कुनैन की गोली दी। तब क्या यह पूछते हैं कि हिन्दू कुनैन है, या जैन कुनैन है, या बौद्ध कुनैन है? कुनैन है। हमको मलेरिया है तो क्या यह हिन्दू का मलेरिया है बौद्ध का मलेरिया है जैन का मलेरिया है? बस मलेरिया है। मलेरिया सार्वजनिक रोग है और कुनैन उसकी सार्वजनिक औषधि है। इसमें हिन्दू पने की, जैन पने की, बौद्ध पने की, ईसाई पने की क्या बात है? धर्म के साथ यह विश्लेषण लग गये तो बहुत बड़ा धोखा हो गया। धर्म का अपना एक अस्तित्व है। बिना हिंदू के, बिना मुस्लिम के, बिना ईसाई के, बिना बौद्ध के, धर्म का एक अपना अस्तित्व है। बहुत बड़ा अस्तित्व है। उसे खो बैठे- उसे हिंदू, बौद्ध, जैन, ईसाई, बनाकर खो बैठे।

धर्म का सही स्वरूप हमारे सामने आये तो बड़ा कल्याण हो जायेगा। धर्म की गंगा सब की होती है। अपने आप को निर्मल करने का काम सब कर सकते हैं। बड़ी आसानी से कर सकते हैं। आगे देखेंगे कि किस प्रकार हम सांस को देखते देखते उन गहराईयों तक पहुँच जायेंगे जहाँ अपने बारे में कुछ भी अनजाना नहीं रह जायेगा। अपने स्वभाव के बारे में कुछ भी नया नहीं रह जायेगा। उन विकारों से निकलने का तरीका मिल जायेगा और कदम-कदम चलते हुए हम उस अवस्था तक पहुँच सकेंगे जहाँ विकार का नामोनिशान नहीं होगा।

संतो की वाणी में विपश्यना की झलक

यह भारत की अपनी विद्या है। बहुत पुरातन विद्या है। परंतु दुर्भाग्य से विद्या हमारे देश से लुप्त हो गयी। फिर भी जब संतो की वाणी पढ़ते हैं तो लगता है भारत में अनेक संत ऐसे हुए जो भीतर ही भीतर विपश्यना करते हैं। उनकी वाणी पढ़े तो विपश्यना ही भरी है यद्यपि विपश्यना शब्द वे भी भूल गये और इस शब्द का कही प्रयोग नहीं किया।

यह भी सच है कि वे इस विद्या को सिखा नहीं पायें। जब विद्या ही नष्ट हो गयी तो विधिवत ढंग से, वैज्ञानिक ढंग से यह कैसे सीखी या सिखायी जाती? उनके अपने पूर्व जन्म के अभ्यास के फलस्वरूप उनमें स्वतः जाग गयी और उन्होंने स्वयं तो यह काम

किया होगा, पर लोगो को सिखा नहीं पायें। यह उनकी बाणी से स्पष्ट होता है। भारत को एक संत कहता है कि भाई यह जो कुदरत को कानून है, यह जो धर्म है, यह जो सत्य है, यह जो नियम है, यह जो ऋत है, यह जैसा बाहर है ठीक वैसा अन्दर है। बाहर और भीतर की सच्चाई में कोई भेद नहीं है। कुदरत का कानून जैसे मैरे पड़ोसी पर असर करता है, वैसे ही मुझ पर असर करता है। कुदरत का कानून जैसे सब पर असर करता है वैसे ही हम पर असर करता है। किसी का पक्षपात नहीं करता। सच्चाई एक ही है, नियम एक ही है, धर्म एक ही है, सार्वजनीन है। संत कहलाता है-

बाहर भीतर एको सच है, यह गुरुज्ञान बताई रे।

‘जन नानक बिन आपा चीन्हे, कटे न भ्रम की काई रे।।

जो बाहर है सो भीतर है। हर सदगुरु यही बात कहता है। गुरु ने यही बात बताई कि कुदरत का जो कानून मन के भीतर काम कर रहा है, वही बाहर काम कर रहा है। सच्चाई एक ही है। लेकिन हम उस सच्चाई को केवल मानकर रह गये। गुरु महाराज ने कहा है, इसलिये मान रहे है। भगवान बुद्ध ने कहा, इसलिये मान रहे है। भगवान महावीर ने कहा इसलिये मान रहे है। हमारी गीता कहती है, बाईबील कहती है, कुरान कहता है, इसलिये मान रहे है। केवल मान कर ही रह गये। यह हमारा अपना ज्ञान नहीं है, पराया ज्ञान है।

पराया ज्ञान, सुना हुआ ज्ञान हमें प्रेरणा दे सकता है, मार्ग दर्शन दे सकता है, पर हमें विकारों से मुक्त नहीं कर सकता। वह पराया ज्ञान है। जब हम उसे अपनी अनुभूति पर उतारेगे तभी वह हमारा ज्ञान होगा। किसी ने हमें अपनी अनुभूतियों पर जागा हुआ ज्ञान हमें कहा और उसे सुनकर जब हम उसे अपनी अनुभूति पर उतारने लगे, तब वह हमारा ज्ञान हो गया। तब कल्याण हो गया।

किसी की साखी शब्द बन गये। संतो की साखी ‘सबद’ बन जाती है। क्या है साखी? उसने सत्य का साक्षात्कार किया। उसकी जो साक्षी है, उसने शब्दों पर उतारी। वही साखी सबद बनी। यह साखी हमारे लिये कल्याणकारि भी हो सकती है और अगर हम केवल ही बुद्धि-विलास कर के रह गये तो हानि कारक भी रह सकती है। केवल वाणी-विलास कर के रह गये कि हमारे संत ने ऐसा कहा, हमारे गुरु महाराज ने ऐसा कहा, हमारे बुद्ध ने ऐसा कहा, हमारी गीता ने ऐसा कहा, - उन्होंने कहा और हमने मान लिया कि बड़ा अच्छा कहा तो हानि हो गयी। सारा जीवन खो दिया इस नशे में। लेकिन वही सबद जो किसी की साखी थी, जब हमारे लिये भी साखी बन गया, हमने भी उसका साक्षात्कार कर लिया तो हमारा कल्याण हो गया, मंगल हो गया। इसी को संतो ने कहा कि उसे जानो, केवल मानकर के मत रह जाओ।

इसी को हर महापुरुष कहता है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे केवल मान कर रह जाओगे तो तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। उसे जान लोगे, अपनी अनुभूति पर उतार लोगे तो सब कुछ मिल जायेगा। इसीलिए नानक कहता है कि इसी सच्चाई को जो बाहर और भीतर एक ही है उसे जन नानक - नानक जान गया है। कोरी बात नहीं करता। केवल किसी गुरु की कई हुई बात नहीं दोहराता। केवल शास्त्रों की बात नहीं दोहराता। जान गया है। और जान कर कहता है- बिन आपा चीन्हे- जब तक अपने आप को भीतर से नहीं पहचानोगें; अपने बारे में क्या सच्चाई है, उसे स्वयं अनुभूतियों से नहीं जानोगे; तो “ कटे न भ्रम की काई रे ’ ,तब तक यह जो भ्रम है, यह जो भ्रंति है, इसमें सारा जीवन बीत जायेगा। यह कोई दूर नहीं होगी। यह अंधेरा दूर नहीं होगा। भ्रंति में ही पड़े रहोगे।

किसको ‘ मैं कहता हूँ? यह सारा शरीर स्कंध- ‘मै-मै’ ‘मेरा-मेरा’ क्या सचमुच ‘मैं’ है? क्या यह सचमुच मेरा है? क्या यह सचमुच मेरी आत्मा है? किसी ने कहा“नहीं ,यह तू नहीं है, यह तेरा नहीं है, यह तेरी आत्मा नहीं है।” ऐसा किसी ने कहा और मेने मान लिया। मैंने जाना तो नहीं न? इसी सच्चाई को जानेगे, अनुभूतियों के स्तर पर जानेगें, कि क्या है यह सारा शरीर स्कंध जिसे मै-मै, मेरा-मेरा किये जा रहा हूँ। इसके प्रति कितना गहरा तादात्म्य स्थापित कर लिया । कितना चिपकाव पैदा कर लिया। उसके प्रति कितनी बड़ी आसक्ति पैदा कर ली और उस आसक्ति के कारण कितना तनाव पैदा कर लिया, कितनी अंशान्ति पैदा कर ली, कितनी पीड़ा पैदा कर ली। आखिर यह मैं है क्या? क्या प्रपंच है इस शरीर का?

इसी प्रकार यह चित्त का प्रपंच जिसको -मै-मै’ ,मेरा-मेरा किये जा रहा हूँ ,आखिर यह क्या है? किसी की कही हुई मान लेने मात्र से बात समझ में नहीं आयेगी। इसीलिए संत कहता है आंखो से स्वयं देखो, स्वयं जानो तो भ्रम दूर होगा।

एक और संत कहता है-

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखो की देखी।

मैं कहता सुलझावन वाली, क्यों तू रहा उलझाय रे’ ॥

अनुभव करता है तो भ्रंतिया दूर होती है। सुलझने लगता है। केवल पुस्तकें पढ़ कर रह जाता है, केवल प्रवचन सुनकर रह जाता है तो उलझा रह जाता है। यही बात समझ में नहीं आती।

इस शरीर और चित्त के परे की अनुभूति ,इन सारी इंद्रियों के परे की इंद्रियातीत अनुभूति , भवातीत अनुभूति , लोकातीत अनुभूति ,जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, अमृत

है उसका तो कहना ही क्या- यह जो इंद्रियों के क्षेत्र की भी सूक्ष्म अवस्थाओं की अनुभूतियों है, इन्हें भी शब्दों पर कोई कैसे रहेगा? शब्दों में इतनी शक्ति कहां कि मनुष्य की सारी अनुभूतियों को उतार सकें? भाषा की अपनी सीमा होती है। शब्दों की अपनी सीमा होती है। फिर भी लोगो को समझाने के लिए कहीं कुछ कहना पड़ जाता है तो कहते हैं, पर लोग समझ नहीं पाते ,तो उलझ जाते हैं।

बरसों बीत जाते हैं,संदिया बीत जाते हैं तो शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। ढाई हजार वर्ष पहले किसी महापुरुष ने किसी एक शब्द का प्रयोग किया। ढाई हजार वर्षों में एक भाषा बदल गये, शब्दों के अर्थ बदल गये। हम आज की भाषा के अनुसार उसका अर्थ करना चाहेगे तो उलझ जायेगें। भ्रंति ही पैदा होगी। मान लें कि शब्द नहीं बदला, उसका अर्थ भी नहीं बदला, तो भी उस महापुरुष ने अपने जिस धरातल पर एक बात कही, उसे जिस प्रकार का अनुभव हुआ और जिस अनुभूति के लिये उसने उस शब्द का प्रयोग किया, हम उस धरातल पर पहुंचे ही नहीं। हम तो किसी भिन्न धरातल पर खड़े हैं,फिर भला उसकी बाणी को कैसे समझेगे? भ्रंति ही पैदा होगी।

जब स्वयं को वही अनुभव होने लगेगा, तब बात समझ में आयेगी। अपने बारे में सच्चाई केवल अपनी अनुभूतियों से जानी जा सकती है। दूसरों के बारे में क्या सच्चाई है,इसको हम बौद्धिक स्तर पर जान सकते हैं। परंतु बौद्धिक स्तर पर जानी हुई बात सीमित सच्चाई के लिये होती है। इसीलिए संत कहता है- कोनो सुनी सो झूठ सब, आंखो देखी सच'। बात वही है। कान से सूनी है तो हमारे लिये झूठ है, एकदम झूठ है क्योंकि हमने आंख से नहीं देखा ,हमने स्वयं अनुभव नहीं किया। वह व्यक्ति जो ये शब्द प्रयोग कर रहा है, अपने किसी अनुभव से कह रहा है। यदि वह अनुभव हमने नहीं किया तो हमारे लिए वह झूठ ही होगी। हम तो उसकी कल्पना ही करेगे-हमारे लिए वह झूठ ही हेगी। हम तो उसकी कल्पना ही करेगें-हमारे भीतर ऐसा एक नित्य ,शाश्वत, ध्रुव सत्य है,बाकी सब प्रंपच ही प्रंपच है। हमने उसे कैसे जाना? जब तक हमने सारे अनित्य-क्षेत्र का स्वयं दर्शन नहीं किया , तब तक उसके प्रंपच को कैसे जानेंगें और उसे जाने बिना उसके परे उस नित्य के क्षेत्र को कैसे समझेगें? कल्पना ही तो करेगें और कल्पना करेगें तो धोखे में पड़ जायेगे। इसलिए जिस व्यक्ति को सच्चाई का दर्शन करना है उसे स्वयं अपने भीतर सच्चाई का स्वयं अनुभव करना होगा।

आत्म-दर्शन

आज तो आत्म-दर्शन का अर्थ कुछ और ही समझने लगे। किसी एक परंपरा में आत्मा के अस्तित्व की मान्यता है। कोई व्यक्ति आत्म-दर्शन के नाम पर आंख बंद कर के उसका दर्शन करे तो कल्पना ही करता है। किसी परंपरा की मान्यता में 'जितना बड़ा शरीर

उतनी बड़ी आत्मा”। ऐसी मान्यता वाला व्यक्ति आत्म-दर्शन के नाम पर उस कल्पना का दर्शन करेगा। बार-बार कल्पना करते-करते, ध्यान करते-करते उसकी आंखों के सामने उसकी शरीर की आकृति आ जायेगी और कहेगा मुझे आत्मा के दर्शन हो गये। धोखा हो जायेगा, बहुत बड़ा धोखा हो जायेगा।

किसी परंपरा में ऐसी आत्मा के अस्तित्व की मान्यता है जो “अंगुष्ठ-प्रमाण” है- अंगूठे के जितनी बड़ी है। अब वह व्यक्ति आत्म-दर्शन के नाम पर किसी ऐसी आत्मा का दर्शन करेगा जो अंगूठे जितनी है। वह व्यक्ति ध्यान करेगा कि आत्मा तिल के जैसी है। किसी की मान्यता में आत्मा एक बाल जैसी है तो बाल जैसी का ध्यान करेगा। कल्पना ही कल्पना करेगा, सच्चाई कहां? किसी की मान्यता में आत्मा है ही नहीं तो वह भी कल्पना करेगा कि आत्मा है ही नहीं। बस कल्पना ही कल्पना। सच्चाई कहां?

आत्मदर्शन करना है, यानी जिसको -मैं-मैं’ किये जा रहा हूं, उसकी सच्चाई का अनुभूति से दर्शन करना है। आत्म शब्द का अर्थ उन दिनों स्व होता था। यानी स्वयं अपने बारे में सच्चाई को जानो। स्वयं अपने आप को देखो। अब शब्दों के अर्थ बदलते-बदलते हमने कहां पहुंचा दिया? आत्मा से आत्मा को देखो। क्या देखेंगे? कल्पना करेगा- एक आत्मा देखने वाली और एक आत्मा वह जो देखी जा रही है। कल्पना ही कल्पना होगी। बात समझ में ही नहीं सच्चाई है उसे स्वयं देखना है। उसे अपनी अनुभूति पर उतारना है। बस अपने आप सच्चाई समझ में आने लगेगी। और इस तरह आगे बढ़ते चले जायेंगे।

‘ आपे जाणे आपे आप, रोग न व्यापे तीनों ताप’।

- जो अपने आप को जानने लगा, उसके सारे दुख दूर हो गये। सारे ताप दूर नहीं होते, दुख दूर नहीं होते। अंदर अपने आप को जानने लगा तो सारा प्रपंच जानने लगा। किसे ‘मैं’ कह कर रहा हूं! किसको ‘मेरा’ कह रहा हूं! यह शरीर -प्रपंच किस प्रकार काम करता है! चित्त-प्रपंच किस तरह काम करता है। दोनों एक दूसरे से कैसे प्रभावित होते हैं। कैसे प्रतिक्रिया करते हैं। कैसे इस प्रतिक्रिया का एक प्रवाह चलता रहता है! और कैसे हम विकार जगाते रहते हैं और उसकी वजह से व्याकुल होते रहते हैं। विकार जगाना बंद कर दे, इस प्रतिक्रिया का प्रपंच बंद कर दें तो देखेंगे, हम स्वयं दुखों के बाहर आने लगे, क्योंकि विकारों से बाहर आने लगे।

वैज्ञानिक खोज

यह विज्ञान है। भारत के ऋषियों ने, प्रकृति के नियमों के विज्ञान को अनुसंधान किया, ऋत का अनुसंधान किया। इन नियमों के अनुसार क्या होने से क्या हो जाता है, उसे धर्म कहा जाता था।

प्रतीत्य-समुत्पाद एक ऐसी ही नियम-श्रृंखला है जिसमें समझाया है कि ऐसा प्रत्यय होने से यह उत्पाद होगा ही। ऐसे-ऐसे कारणों का जमाव होगा तो उसका यह परिणाम आयेगा ही। देश की पुरानी भाषा में इसे धर्म कहते थे। दो भाग हाइड्रोजन , एक भाग आक्सीजन मिले तो पानी बनेगा ही। इसमें हिंदूपने की क्या बात है? यह विज्ञान-सिद्ध कुदरत का कानून है। इस अनुपात में इन दोनों गैसों का मेल होगा तो ही पानी का निर्माण होगा। जिन ग्रहों या उपग्रहों में हाइड्रोजन या आक्सीजन नहीं अथवा दोनों नहीं, वहां पानी होगा। हो ही नहीं सकता।

ठीक इसी प्रकार हमें भीतर का होश न हो, अंदर जो हो रहा है उसके प्रति हम जागरूक न हों और राग , द्वेष या किसी अन्य विकार की प्रतिक्रिया करें तो उसके परिणाम स्वरूप हम दुखी हो ही जायेंगे। यह कुदरत को नियम है। आदमी बेहोशी में राग जगाता है, द्वेष जगाता है, ईर्ष्या जगाता है, अहंकार जगाता है। उसे होश नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं क्योंकि उसके भीतर जागृति नहीं आई। उसने अपने भीतर सत्य को देखने का काम सीखा ही नहीं। इसीलिए विकार जगा रहा है और व्याकुल हो रहा है। चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध या जैन हो; ऐसी आत्मा को मानने वाला हो अथवा किसी आत्मा को न मानने वाला हो; ऐसे ईश्वर या वैसे ईश्वर को न मानने वाला हो, विकार जगायेगा तो व्याकुल होगा ही।

कोई अपने भीतर राग या द्वेष जगाकर स्वयं देख ले , व्याकुल होता है या नहीं? मान्यताएं चाहे जो माने, कुछ काम नहीं आयेगी। ये केवल मान्यताएं हैं, या जान्यताएं नहीं हैं। जानामि- जब धर्म को अनुभूतियों के स्तर पर जानने लगेंगे, तब सारे जंजाल दूर हो जायेंगे। कितने बड़े भ्रम में जीवन बीत जाता है। मैं दुखी होता हूं तो मुझे पता ही नहीं लगता कि मैं क्यों दुखी हुआ? ऊपर-ऊपर से यही सच लगता है कि उसने मुझे गाली दी, इसलिए मैं दुखी हुआ। उसने मेरा अपमान किया इसलिए मैं व्याकुल हुआ। यह अनचाही बात हो गयी , इसलिए व्याकुल हुआ। यह मनचाही बात नहीं हुई, इसलिए व्याकुल हुआ। ऊपर-ऊपर नजरों से देखे तो यह बात सच भी है कि किसी ने मेरा अपमान किया, कोई अनचाही बात हो गयी, कोई मनचाही बात नहीं हुई, इसलिए मैं व्याकुल हो गया। परंतु यह ऊपरी-ऊपरी सच्चाई है। जिस दिन भीतर की सच्चाई देखना शुरू कर देंगे, उस दिन बात अच्छी तरह समझ में आने लगी कि मेरे व्याकुल होने का कारण उस व्यक्ति द्वारा दी गयी गाली नहीं ; बल्कि मेरे दुख का कारण, मेरी व्याकुलता का कारण मेरे भीतर समाया हुआ है।

मैं जब-जब विकार पैदा करता हूं, व्याकुल हो जाता हूं। कोई गाली मेरे कानों में पड़ी और मैं विकार जगाया, तो इस विकार की वजह से व्याकुल हुआ। लेकिन विकार जगाने के पहले न जाने कितनी घटनाएं मेरे भीतर और घट गयीं। भीतर झांकेगा तो ये सारी

घटनाएं देखने लगेगा। चित्त और शरीर का यह सारा प्रपंच देखने लगेगा। इनकी आपस की प्रतिक्रियाएं देखने लगेगा तो बात समझ में आ जायेगा और उसके बाहर निकलना आसान हो जायेगा। कल्पनाओं में पड़े रहेगे, दार्शनिकमान्यताओं में पड़े रहेगें तो इससे छुटकारा नहीं मिलेगा।

मैं जब-जब विकार पैदा करता हूं, व्याकुल हो जाता हूं। कोई गाली मेरे कानों में पड़ी और मेने विकार जगाया, तो इस विकार की वजह से व्याकुल हुआ। लेकिन विकार जगाने के पहले न जाने कितनी घटनाएं मेरे भीतर और घट गयीं। भीतर झांकेगा तो ये सारी घटनाये देखने लगेगा। चित्त और शरीर का यह सारा प्रपंच देखने लगेगा। इनकी आपस की सारी प्रतिक्रियाएं देखने लगेगा तो बात समझ में आने लगेगी और उसके बाहर निकलना आसान हो जाएगा। प्रकृति का स्वभाव समझ में आने लगेगा। कल्पनाओं में पड़े रहेगें, दार्शनिक मान्यताओं में पड़े रहेगें तो इससे छुटकारा नहीं मिलेगा।

भारत में जो धर्म होता था वह बहुत बड़ा विज्ञान था, ऋत था, कुदरत का कानून था। ऋत विज्ञान को कहते हैं। कुदरत की सच्चाई को ऋत कहत है। हमने उसको अंध मान्यताओं में उलझा दिया, दार्शनिक मान्यताओं में उलझा दिया, और सच्चे धर्म को खो बैठे।

सत्य को जैसा है वैसा देखना है। कल्पना को नजदीक नहीं आने देना है। अंतर्मुखी हुए और कोई कल्पना करने लगे तो कल्पना के आधार पर चित्त एकत्र अवश्य हो जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन धर्म नहीं जान पायेगें। कुदरत के कानून को नहीं जान पायेंगें। अपने अंतर्मन की जिस गहराइयों में जिस स्वभाव शिंकजे में जकड़ गये हैं, गिरफ्तार हो गये हैं, उस स्वभाव शिंकजे के बाहर नहीं निकल पायेगें। भीतर ही भीतर ऐसी ग्रंथियां पैदा कर ली, ऐसी एक स्वभाव-शैली बना ली कि जहां मनचाही हुई वहां राग पैदा कर लिया, जहां अनचाही हुई वहां द्वेष पैदा कर लिया। यह जो स्वभाव बना लिया है इसके बाहर कैसे निकलेगे? ऊपर-ऊपर से मन को शांत कर लेगें पर भीतर तो स्वभाव वैसा का वैसा रहेगा। अपने भीतर अंतर्मन की गहराइयों तक जाने के रास्ते में ये सारी बातें हमें भरमाती हैं। ये सारी बातें मन को एकाग्र तो करती हैं, ऊपर-ऊपर से शांति भी ले आती हैं, लेकिन हमको अपने भीतर की सच्चाई नहीं देखने देती। इसलिए इन कल्पनाओं को एक ओर रखें।

झूठ को नजदीक नहीं आने देंगें। जहां किसी मानी हुई बात की कल्पना करने लगे, हमारे लिए झूठ हो गयी। क्योंकि हम उसकी कल्पना ही करेगें -हमको अनुभव तो हुआ नहीं, हमने स्वयं तो देखा नहीं। किसी ने कह दिया- दिल्ली में एक कुतब मिनार है, वह ऐसी है, वह वैसी है। हम बैठ कर उसका ध्यान करेगें तो जैसा सुना था वैसी ही कल्पना

करेंगे कि कुतुब मिनार ऐसी है वैसी है। किसी देखा और हमने सुना ,उसका ध्यान हमारे लिये खतरनाक हो गया। हमने स्वयं देखा,अपनी अनुभूति पर उतारा और उसको देखते चले गये, तो बड़े कल्याण की बात हो गयी।

अनुभूति द्वारा जानने का जो तरीका बताया उससे स्पष्ट है कि भारत के अनेक संत विपश्यना ही करते थे । भले यह शब्द इस्तेमाल नहीं किया पर विपश्यना ही किया करते थे। संत नानक ने समझाया कि कैसे करोगे ? कहा-

“थापिआ न जाइ , कीता न होइ, आपे आपि निरंपनु सोइ”।

जिस क्षण तुम्हारे भीतर जो सच्चाई प्रकट हो , उस पर कुछ थोपने मत लग जाना। नहीं तो भटक जाओगे, क्योंकि सच्चाई नहीं देख पाओगे। फिर तो अपनी मान्यता को देखोगे। यदि तुमने लाल रंग का चश्मा चढ़ा रखा है, तो उसे सच्चाई पर लाल रंग थोप दिया। किसी ने हरे रंग का चश्मा चढ़ा रखा है उसने उस सच्चाई पर हरा रंग थोप दिया। चश्मों के सारे रंग उतारों। ‘यथाभूत’-जैसा है,वैसा है। उस पर कुछ थोपो मत “थापिया न जाइ”।

“कीमत न होइ”- अपनी तरफ से कुछ ‘करने’ की कोशिश मत करो और न कोई कल्पना थोपने की कोशिश करो। जो सच्चाई अपने आप प्रकट हुई है उसे देखो और जानो। हमने कृत्रिम रूप से कुछ पैदा किया और उसे देखने लगे तो सत्य का दर्शन नहीं कर पायेगे। फिर उलझ जायेगे। इसलिए “ आपे आपि निरंजनु सोइ” - अपने आप जो होता है, वह ईश्वर है,वह परमात्मा है। सत्य ही ईश्वर है। और इस सत्य के सहारे चलते चलते परम सत्य तक पहुच जायेगे। परम सत्य ही परमेश्वर है यह बात समझ में आ जायेगी। अन्यथा कोई काल्पनिक ईश्वर हमारे सर पर सवार हो जायेगा। काल्पनिक निर्वाण हमारे ऊपर सवार हो जायेगा। हम सच्चाई से दूर हो जायेगे।

देखे, अपने आप क्या हो रहा है। इसे जानने के लिए यह एक सूत्र पकड़े रखना होता है कि इस क्षण मेरे भीतर जो सच्चाई प्रकट हुई, मुझे उसी को दुष्टप्रभाव से , साक्षीभाव से, तटस्थभाव से देखना है यानि जानना है। अगले क्षण जो सच्चाई प्रकट हुई उसको बीते हुए क्षण की सच्चाई से नहीं जोड़ना है। उस क्षण जा सच्चाई प्रकट हुई, वह जैसी है, वैसी देखेंगे। उससे अगले क्षण जो सच्चाई प्रकट हुई,उस क्षण उसे देखेंगे। यों क्षण प्रतिक्षण,क्षण प्रति क्षण जो-जो सच्चाई प्रकट होती जायेगी उसी को देखेंगे। उसके स्वभाव को समझते जाएंगे। उसको देख रहे है तो सत्य का दर्शन कर रहे है। उसका स्वभाव समझ रहे है तो धर्म का दर्शन कर रहे है। यह जो सच्चाई प्रकट हुई इसका धर्म क्या है, यानी इसका स्वभाव क्या है ? बस, दो बात-सत्य का दर्शन है, धर्म का दर्शन है। और सत्य ऐसा जो हमारे बारे मे है। इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर जो सत्य प्रकट हो रहा है, संतो

ने इसी की खोज करने के लिए कहा। हर संत जो मुक्त होता है, अपने भीतर सच्चाई का दर्शन करने के लिए कहता है। भारत का एक और संत कहता है-

“तीन हाथ एक अड़धार्ई, ऐसा अंबर चीन्हो मेरे भीई,

देखो मेरे भाई , खोजो मेरे भाई ।

‘ तीन हाथ एक अड़धार्ई’- तीन हाथ और एक आधा हाथ याने इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर जो अंबर है, जो प्रकाश है, जो आकाश है, उसमें सच्चाई की खोज करें। मानो आज के वैज्ञानिको को भारत का यह संत चुनौती देता है- बाहर अंतरिक्ष में क्या खोजने निकले हो ? क्या मिल जायेगा ? अंदर खोजो, अपने अंदर की सच्चाई को देखो। सब कुछ मिल जायेगा, जो कल्याणकारी होगा।

पंजाब का एक मुस्लिम संत कहता है। संत तो संत होता है, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, ? जिसका चित्त शांत हो गया, निर्मल हो गया, वहां संत हो गया। तो पंजाब का यह संत कहता है-

“हाशिम तिण्हा रब्ब पछता, जिण्हा अपना आप पछता’।

जिसने अपने आप को पहचान लिया, उसने रब्ब को पहचान लिया, परमात्मा को पहचान लिया। परमात्मा को पहचानने के लिए परमात्मा की कल्पना करेगा तो क्या मिलेगा ? अपने आप को पहचाने , सच्चाई को पहचाने । अनुभूतियों के स्तर पर पहचाने तो सारा रास्ता खुल जायेगा।

अपने आप को जानने का विषयना का यह मार्ग भारत का बहुत पुराना मार्ग है इसलिए वेदों में भी इसकी बड़ी प्रशंसा गायी गयी है। हर पंरपरा में विषयना की प्रशंसा भरी है। लेकिन सारी पंरम्पराए इसे भुला चुकी है। देश के सौभाग्य से फिर भारत में आई है तो इस विधि को खूब अच्छी तरह समझें। इस विद्या पर काम करना है तो अपनी और से कुछ थोपेगै नही। अपनी और से कुछ उत्पन्न करने की चेष्टा नहीं करेगें। अपने आप जो होता है से होता है, जो भी होता हो, उसे ही स्वीकार करेगें।

समय लगेगा। कोई आदमी यह सबसे कि दस दिन का शिविर पूरा करते ही मैं वीतराग हो जाऊंगा या वित द्वेष हो जाऊंगा या मैं स्थितप्रज्ञ हो जाऊंगा- ऐसी आज्ञा लेकर नहीं आर्यें। पहली कक्षा में आयेगें। अणु-सिद्धातक की बात अभी नहीं। जब उस अवस्था पर पहुंचेगें तब अणु की बात समझेगें। अभी तो पहली कक्षा में जायेगें। क, ख, ग, घ, सीखने जायेगें। सीखेगें की हम इस तरह से क, ख, ग, घ, लिखा करते थे, अब जरा ऐसा भी लिख कर देखे। देखे, यह विद्या कहां ले जाती है ? इसे आजमाने के लिए आर्येंगें।

आजमा कर देखें ,कितनी शीतलता प्राप्त होती है, कितनी शांति प्राप्त होती है! जीवन कैसे सुख-शांति से भर जाता है! अपना भी मंगल होने लगता है, दूसरे का भी मंगल होने लगता है। अपना भी कल्याण होने लगता है, दूसरे का भी कल्याण होने लगता है। जीवन जीने की एक बहुत अच्छी कला हाथ आ जाती है।

4. विपश्यना : धर्म का तीसरा चरण

धर्म -गंगा के तट पर बैठे हैं। तट पर बैठना अच्छा लगता है, पर लाभ तो तभी होगा जब धर्म की गंगा में डुबकी लगाना शुरू कर देंगे। यह तो किनारे किनारे की शीतलता महसूस होने लगती है वह उस भीतर की शीतलता की तुलना में कुछ भी नहीं है। अपने भीतर जो धर्म की गंगा बहती रहती है, उसमें डुबकी लगानी है।

कोलाहल-भरे नगर में रहने वाला व्यक्ति, भाग -दौड़ को जीवन जीने वाला व्यक्ति , तनाव कसाव का जीवन जीने वाला व्यक्ति अपना तनाव दूर करने के लिए थोड़ी देर गंगा या समुद्र के किनारे जाकर बैठता है। अपने शरीर और मन को जरा हल्का करने के लिए बैठता है। यह अच्छा तो है लेकिन पूर्णतया अच्छा नहीं है। सागर की गहराई में सीप है और उस सीप में मोती है, मुक्ता है। मुक्ता मानों मुक्ति है। बैठा ही रहा तो उससे वंचित रह जायेगा। किनारे पर बैठा डरता ही रहेगा कि पानी में पावं कैसे रखूं ; डरता रहेगा तो मोती प्राप्त नहीं कर सकेगा।

मैं भोली डरती रही, रही किनारे बैठ।

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैट।।

जिसे खोजना होता है वह समुद्र के किनारे बैठा नहीं रहता। उसको बहुत गहराई में डुबकी लगानी होती है। समुद्र की तलस्पर्शी गहराई तक पहुंचता है तभी बहां सीप प्राप्त होती है। उस सीप के भीतर का मोती प्राप्त होता है, मुक्ता प्राप्त होता है। मुक्ति प्राप्त होती है।

धर्म की चर्चा करनी अच्छी बात है। धर्म के प्रवचन सुनना अच्छी बात है। पर पूर्णतया अच्छी बात नहीं है। धर्म-प्रवचन हमें प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन देते है। परंतु सचमुच लाभ तो तब होगा जब धर्म धारण करने लगेंगे। इसके बिना लाभ नहीं होता। गहराइयों स्वयं दर्शन किये बिना, स्वयं अनुभव किये बिना समझ नहीं पायेंगे। बहुत बड़ी भ्रान्ति में रहेंगे। सच्चाई से दूर रह जायेंगे।

तारक कौन ?

भीतर की सच्चाई का दर्शन करना हो तो अपने मन का मैल दूर करना होता है। भव सागर से पार उतरना हो, दुःख सागर से पार उतरना हो तो चित्त को विकारों से विमुक्त करना होता है। चित्त विकारों में डूबा रहे और हम समझें कि मुक्त हो जायेंगे, यह नहीं होता। बंधन किस बात का है? विकारों का ही तो बंधन है। मुक्ति किससे है? विकारों से ही तो मुक्ति है। विकार कायम रहें और हम समझें कि हम मुक्त हो जायेंगे तो धोखा ही होगा।

किसी ने कहा नदी का परला तट बड़ा सुहावना है। परंतु उसके दर्शन के लिए हमें स्वयं सारी नदी पार करनी होगी। नदी के इस तट पर बैठे हम कल्पना करते रहे कि उस और को तट बड़ा मनोरम है, इतना सुहावना है, इतना कल्याणकारी है। केवल कल्पना ही करते रहे तो उसका दर्शन नहीं कर पायेंगे, साक्षात्कार नहीं कर पायेंगे। नदी के इस तट पर बैठा व्यक्ति कामना करता है कि -ऐ नदी के वह तट, मैं तुझे देखना चाहता हूं ! ऐ नदी के वह तट, तू यहा आ जा! तु मुझे दर्शन दे दे!” सारे जीवन रोता रह जायेगा, सारे जीवन प्रार्थना करता रह जायेगा, नदी का वह तट यहां आने वाला नहीं है। आ ही नहीं सकता। इसी प्रकार जैसे कि नदी के उस पार मुक्ति है। जिसको नदी के उस तट पर स्थित मुक्ति का दर्शन करना है, मुक्तावस्था का दर्शन करना है, निर्वाणिक अवस्था का दर्शन करना है, नित्य,शाश्वत, ध्रुव अमृत का दर्शन करना है, उसको सारी नदी स्वयं पार करनी होगी।

कोई अन्य व्यक्ति पार करें और उसका लाभ मुझे मिल जाय, ऐसा नहीं हो सकता। कुदरत का कानून ऐसा होने नहीं देता। जिसे मुक्ति का अनुभव करना है उसे स्वयं संसार-सागर पार करना पड़ेगा। उस पार स्वयं पहुंचना पड़ेगा। इसके लिए मन को निर्मल करना पड़ेगा।-

“जो निज चित्त तजे न विकारा, सो कैसे होवे भवपारा?”

चित्त में विकार रहें और हम भव-पार भी हो जायें , ऐसा समझना धोखे की बात है। इससे बड़ा अन्य कोई धोखा नहीं होता । लेकिन मनुष्य है कि धोखे में रहना चाहता है“कि मुझमें अनेको दोष हो, मेरा मन अत्यंत मैला हो, राग द्वेष और मोह से भरा हो, क्रोध वासना और अंहकार से भरा हो, फिर भी किसी की मुझ पर कृपा हो जाय। कोई मुझ पर कृपा कर दें और तार दे। ऐसी कृपा करने वाला कोई अवश्य है और वह मुझे अवश्य तार देगा। मुझ पर तो उसकी कृपा अवश्य हो ही जायेगी।”

बेचारा नासमझ मानव यह भी नहीं सोचता कि कृपा उस पर ही क्यों हो जायेगी? उसमें क्या विशेषता है? औरों पर कृपा भले न हो, लेकिन कृपा करने वाला उस पर अवश्य

कृपा कर देगा और मन में मैल रहते हुए भी उसे तो जरूर तार देगा। क्यों? क्योंकि उसे खुशामद करनी खूब आती है, झूठी प्रशंसा करनी खूब आती है।

तारने वाले का ऐसा अवमूल्यन कर दिया जैसे वह कोई गया गुजरा सांसारिक प्राणी हो! “हमारा नाम ले लो, जरा खुशामद कर दो, हम तुम्हें तार देंगे।” जैसे वह अपना नाम सुनने का बड़ा शौकीन है। उसे बड़ा शौक है कि किसी तरह अपना नाम सुनें। जो नाम लेगा उसको तार देगा, जो नहीं लेगा उसे नहीं तारेगा। यदि सचमुच ऐसा हो तो वह तारने वाला कैसा अंहकार का पुतला है? हम सोचते नहीं कि मुक्ति विकारों से प्राप्त करनी है। बंधन विकारों का है। किसने हमें हथकड़ियां पहना रखी है? इन विकारों ने बांध रखा है। जिसके विकार दूर हुए वह मुक्त हो गया, भव-पार हो गया। यह बात जितनी जल्दी जिसकी समझ में आएगी, उतनी जल्दी शुद्ध धर्म के रास्ते चल पड़ेगा, अपने मन के विकार दूर करने के रास्ते चल पड़ेगा। अन्यथा हिंदू धर्म के रास्ते चलेगा, जैन धर्म के रास्ते चलेगा, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, मुस्लिम धर्म या सिक्ख धर्म के रास्ते चलेगा। इन संप्रदायों में ही उलझा रह जायेगा। उसकी समझ में ही नहीं आयेगा कि धर्म क्या होता है।

सत्य ही धर्म है

सच्चाई को ही धर्म कहते हैं। जैसे-जैसे सच्चाई का स्वयं दर्शन करता चला जायेगा, धर्म में पकता चला जायेगा। दर्शन किसी अन्य ने किया और हमने केवल स्वीकार किया तो हमें कोई लाभ नहीं होने वाला। प्रेरणा मिलेगी, मार्ग दर्शन मिलेगा, पर लाभ ता तभी मिलेगा जब हम दर्शन करना शुरू कर देंगे। और दर्शन करने के लिए-

‘जो दर्शन करना चाहिए, तो दर्पण मांजल रहिए।’

दर्पण साफ होगा तभी अपना दर्शन होगा और अपना चेहरा जैसा है वैसा नजर आयेगा।

यदि दर्पण साफ हो तो मैं क्या हूँ, कैसा हूँ मेरे बारे में क्या सच्चाई है- यह सारी बातें मालूम होने लगेंगी। पुराने जमाने में दर्पण भी नहीं हुआ करते थे। लोग अपना चेहरा देखने के लिए किसी पात्र में बहुत पानी रखते थे, बड़ा स्वच्छ पानी, पारदर्शी पानी, और उसमें अपना चेहरा देख लेते थे। अगर पात्र का पानी हिल-डुल रहा है, उसमें बड़ी हलन-चलन हो रही है, तो चेहरा नहीं देख पायेंगे। पानी को शांत करना होगा। पानी शांत हो गया पर मैला है या उसमें कोई गहरा रंग पड़ा है तो भी चेहरा साफ नहीं दिखाई देगा। अतः शांत भी हो और निर्मल भी हो तब सच्चाई का दर्शन होना शुरू हो जायेगा।

देश के संतो, मुनियों, ऋषियों, बुद्धों अरहंतों जिन्होंने स्थिरप्रज्ञों अनासक्तों और जीवन मुक्त लोगों ने एक ही रास्ता बताया- सत्य ही ईश्वर है, धर्म ही ईश्वर है। उस सत्य-धर्म का साक्षात्कार करना है। इस क्षण जो सत्य प्रकट हुआ- यथाभूत बस जैसा है, वैसा है- उसका दर्शन नहीं होगा। अपनी मान्यताओं का रंग-रोगन चढ़ाने लगेंगे तो यथाभूत दर्शन नहीं होगा। अपनी मान्यताओं का रंग बीच में आ जायेगा। हम सच्चाई नहीं देख पायेंगे। कोई मान्यता कितनी भी सही क्यों न हो, पर अभी क्योंकि उसे जाना नहीं और केवल वह केवल मान्यता ही है, इसलिये उसे एक ओर रखेंगे। किसी भी मान्यता का लेप सामने न आए तभी यथाभूत दर्शन होगा। ऐसा दर्शन भारत की पुरानी भाषा में सम्यक दर्शन कहलाता था। जैसा है, वैसा है। हमने इसमें कोई मिलावट नहीं की। इस क्षण हमको सच्चाई ऐसी ही नजर आई। हमने उसको स्वीकार किया। अगले क्षण जो सच्चाई नजर आयेगी, उस क्षण उसको स्वीकार करेंगे।

यों क्षण प्रति क्षण, क्षण प्रति क्षण- जिस क्षण जो सच्चाई इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर प्रकट होगी, उसे जानते रहेंगे। बाहर जो सच्चाई प्रकट होती है, वह हमारी अनुभूति नहीं है। इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर जो सच्चाई प्रकट होती है, उसका हम अनुभव करते हैं। बाहर की सच्चाई को केवल बुद्धि के स्तर पर जान कर रह जायेंगे। फिर वह मान्यता हो गयी, अनुभव नहीं हुआ।

भीतर की सच्चाई को अनुभूति के स्तर पर जाने लें तो सचमुच यथार्थ की अनुभूति होगी। यथाभूत - जैसा है, वैसा है। अपने आप क्या प्रकट हो रहा है? 'आपे आपि निरंजनु सोइ' - अपने आप जो प्रकट होता है, वही हमारे लिये ईश्वर है। इस क्षण की जा सच्चाई प्रकट हुई वह ईश्वर है। सत्य ही ईश्वर है। ऐसा जानकर जो आदमी चलेगा वह आगे बढ़ते उससे अधिक सूक्ष्म सत्य उससे आगे और अधिक सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर सच्चाई अनुभूतियों पर उतर जायेगी। बीच में कोई कल्पना करने लगेंगे, मान्यताओं का कोई लेप लगाने लगेंगे तो गाड़ी रुक जायेगी। वह मान्यता प्रमुख हो जायेगी, यथार्थ दूर हो जायेगा।

कोई भी मान्यता बीच में नहीं आने देंगे। जितना जानें, केवल उतना-उतना मानें। जो सच्चाई हम अपने अनुभव से जान रहे हैं उतनी ही मानते हैं। इस तरह जानते मानते शरीर के यानी इस भौतिक जगत के अंतिम सत्य तक, चैतन्य जगत के अंतिम सत्य तक पहुंच जायेंगे। फिर उसका भी अतिक्रमण कर लेंगे। तब शरीर और चित्त के परे जो इंद्रियातीत सच्चाई है, जो भयभीत सच्चाई है उस परम सत्य का साक्षात्कार हो जायेगा। उस दिन जाने लेंगे कि परमेश्वर का साक्षात्कार हो गया। सत्य के सहारे-सहारे चल रहे थे। सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर का साक्षात्कार कर रहे थे। जब परम सत्य तक पहुंच गये, तो परमेश्वर का साक्षात्कार हो गया।

साक्षात्कार होना चाहिए। साक्षात्कार तब होता है, दर्शन तब होता है, जब बीच में कोई पर्दा नहीं हों। बीच में कोई पर्दा होगा तो साक्षात्कार कैसे होगा। हमने अपनी आंखों के सामने भी पर्दा लगा रखा है और उस पर्दे की सच्चाई भी देखना चाहते हैं। यह कैसे होगा? पहले पर्दा दूर करना है। हमने अपनी मान्यता का एक पर्दा खड़ा कर लिया। हमारी परंपरा मानती है जितना बड़ा शरीर है उतनी बड़ी आत्मा है इसलिए हमने भी मान लिया कि आत्मा ऐसी होती है। हमने अपने सामने एक पर्दा रख लिया। पता नहीं सचमुच वह आत्मा कैसी है? हम तो किसी एक बात को केवल मान रहे हैं। वह मान्यता हमने सामने खड़ी कर ली तो सच्चाई को कैसे देखेंगे? अपनी मान्यता के अनुसार ही आत्मा को देखने का प्रयत्न करेंगे। इसी प्रकार मान लिया कि अंगुष्ठ-प्रमाण आत्मा होती है। अब अंगुष्ठ-प्रमाण आत्मा आयेगी तो ही स्वीकार करेंगे। तो उलझ गये। सच्चाई नहीं देख पाए। मान लिया कि तिल के जितनी बड़ी आत्मा होती है, बाल के जैसी आत्मा होती है तो हमने ऐसे पर्दे खड़े कर लिये। मान लिया कि कोई परमात्मा होता है, वह काले रंग का होता है- हमने काले रंग का पर्दा लगा लिया। नहीं-नहीं गोरे रंग का होता है-गोरे रंग का पर्दा खड़ा कर लिया। दो हाथ वाला होता है, चार हाथ वाला होता है, सौ हाथ वाला होता है, मुकुट पहने होता है- हमने जो जो मान्यता अपने भीतर संजा रखी थी उसका बाहा-प्रक्षेपण होने लगेगा। आंख बंद होगी और वह सब बाहर आने लगेगा, क्योंकि मन पर अपनी मान्यता की गहरी छाप अंदर डाल ली। उसका बाह प्रक्षेपण होने लगा।

ध्यान करते-करते जब उन्हें मान्यताओं के बाहरी प्रक्षेपण सामने आने लगते हैं तो हम बड़े प्रसन्न हो जाते हैं कि हमने आत्मा के दर्शन कर लिये, हमने परमात्मा के दर्शन कर लिये। अगर हमने यह मान रखा है कि आत्मा- परमात्मा अलग-अलग होते हैं, हम द्वैतवादी हैं तो यही दिखने लगेगा कि आत्मा और परमात्मा एक ही है, हम अद्वैतवादी हैं तो यही दिखने लगेगा। जो हमने माना वही देखा। अपनी मान्यता को देखा। तो धोखे में रह गये। और जहां सारी मान्यताओं को एक ओर रख कर सच्चाई के साथ-साथ चलेंगे तो सम्यक-दर्शन होता चला जायेगा। अनुभव पर जो दर्शन हो रहा है, जो सच्चाई प्रकट हो रही है, उसे सच्चाई के बल पर जो ज्ञान प्रकट हो रहा है, उसे देखने जायेंगे तो सम्यक ज्ञान होता चला जायेगा। पुस्तकों वाला ज्ञान काम नहीं आयेगा। प्रवचन सुनते हैं, उससे जो ज्ञान जागता है वह काम नहीं आयेगा। अपनी अनुभूतियों से जो ज्ञान जागेगा, वह सम्यक-ज्ञान होगा। वह ज्ञान हमारा कल्याण करेगा। अपने भीतर की सच्चाई जैसी है वैसी है, तो ही कहा है- यथाभूत। यथाकृत नहीं- कुछ निर्माण नहीं करना है। जहां किसी शब्द का उच्चारण शुरू कर रहे हैं, वही अनुभव होने लगेगी, यथार्थ की तरंगों से वचित रह जायेंगे।

“अंजन मांहि, निरंजन देखो। केवल अनुभव हो रहा है, सत्य का अनुभव हो रहा है तो निरंजन है। और जहां रूप का दर्शन होने लगा वह निरंजन नहीं है। यह बात जितनी जल्दी जिसकी समझ में आ जाती है, वह उतनी जल्दी सच्चाई के रास्ते पर चलने लगता है।

“आदि सचु, जगादि सचु है भी सचु, नानक होसी भी सचु’-

आरंभ सच से करेंगे। जो सच्चाई अनुभूति पर उतरेगी वही हमारे लिए ईश्वर है। अगले क्षण जो सच्चाई अनुभव पर उतरेगी वह अगले क्षण की सच्चाई होगी। इस तरह जो जो सामने आयेगा वह सच ही सच, सच ही सच होगा। इस प्रकार जा भी व्यक्ति अपने भीतर सच्चखंड की यात्रा करने लगता है, निर्बैर हो जाता है। चित्त ऐसा निर्मल हो जाता है कि किसी के प्रति बैर रहता ही नहीं।

“मन ऐसा निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।’

गंगोत्री की गंगा निर्मल है। इतनी पारदर्शी है कि पैंदे के कंकर-पत्थर दिखायी देते हैं। बड़ी निर्मल है। चित्त ऐसा निर्मल हो जायेगा तो बैर रहेगा ही नहीं। निर्बैर हो जायेगा तो न किसी को डरायेगा, न स्वयं किसी से डरेगा। निर्भय हो जायेगा। कैसे हो जायेगा? ‘कर्ता-पुरुख’ -स्वयं उस समझ अवस्था को प्राप्त करता है। किसी और ने प्राप्त की और फल हमें मिल जाय, ऐसा नहीं होता। ‘स्वयंभू- स्वयं बनता है। अपने प्रयत्नों द्वारा उस अवस्था तक पहुँचता है। बस गुरु का इतना ही प्रसाद है कि वह मार्ग दिखाने वाला है क्योंकि उस रास्ते पर स्वयं चला है। चला है, तो कहता है भाई, मैं ऐसे चला हूँ, तू भी चल। चलना तो खुद को ही पड़ता है। हम रास्ते पर तो चले ही नहीं, डुबकी लगायें नहीं, पर हमें मुक्ती वाला सीप जरूर मिल जाये- ऐसा कामना करना सिर्फ धोखा ही धोखा है। अपने भीतर सच्चाई को देखने के लिए स्वयं डुबकी लगानी पड़ती है। इसके बिना बात नहीं बनती।

विश्व-गुरु भारत

मन शांत और निर्मल होता चला जाये, ताकि सच्चाई अधिक से अधिक स्पष्ट अनुभूति पर उतरनी शुरू हो जाय। इसका कोई एक तरीका होना चाहिए। हर विद्या का अपना एक तरीका होता है। एक विधि होती है। उस परम सत्य तक पहुँचने की विद्या भारत के पास थी। इसी विद्या के भरोसे भारत विश्वगुरु बना। सारा संसार भारत को पुजने लगा। भारत के पास ऐसी विद्या थी कि अंतर्मुखी होकर भीतर सच्चाई को देखने लगे तो एक और मन के मैल उतरते जायेंगे, तथा दूसरी और उससे गहरी सच्चाई का दर्शन होता चला जायेगा। और अधिक मैल उतरा तो और अधिक गहरी सच्चाई का दर्शन होता चला जायेगा। ऐसा करते करते परम सत्य तक पहुँचे तो कि सारे मैल उतर जायेंगे। मुक्त हो जायेंगे। यह केवल कहने की बात नहीं। यह कोई तत्व ज्ञान की दार्शनिक बात नहीं। यह कोई सिद्धान्तों की बात नहीं। यह कोई करणीय दार्शनिक बात नहीं। यह कोई सिद्धान्तों की बात नहीं। जो करे जितना करे उतना ही उसे लाभ मिले। भारत ने संसार को यह विद्या सिखाई इसलिए विश्व-गुरु बना।

अपने बारे में जो सच्चाई है उसे यथाभूत देखना है, यथाकृत नहीं। कुछ करना नहीं है। अपने आप क्या हो रहा है उसे यानी यथाभूत देखना है, यथाकृत नहीं। यथाकल्पित भी नहीं। उसके बारे में कोई कल्पना नहीं करनी। सुनी सुनाई बात की कल्पना करने लगेंगे तो वह यथाभूत नहीं होगा, यथाकल्पित हो जायेगा। यथावांछित भी नहीं। कामना करने लगेंगे-ऐसा हो जाये, ऐसा मिल जाये- तो यथाभूत नहीं होगा। यथाकृत नहीं, यथावांछित नहीं, यथाकल्पित नहीं यथाआरोपित नहीं, यथाभूत का दर्शन करना है- 'यथाभूत जाण दरसनं'। यह भारत के अध्यात्म की बहुत पुरानी संपदा है। यथार्थ जैसा है, वैसा ही उसका दर्शन हो तो यथार्थ दर्शन है। और उसके स्वभाव को देखते हुए जो ज्ञान आगे वही यथार्थ ज्ञान है।

हमने यथार्थ का दर्शन किया, उसके स्वभाव का अनुभव किया तो हमारा दर्शन सही दर्शन हुआ। हमारा ज्ञान सही ज्ञान हुआ। तब हमारी विमुक्ति भी सही विमुक्ति होगी। सम्यक-दर्शन होगा तो सम्यक-ज्ञान होगा। सम्यक-ज्ञान होगा तो सम्यक-मुक्ति होगी। यह विमुक्ति प्रवचनों से नहीं होती। पुस्तकों के पढ़ने से नहीं होती। कर्मकाण्ड करने से नहीं होती। कोई दार्शनिक मान्यता मान लेने से नहीं होती। किसी संप्रदाय के बाड़े में बंद होने से नहीं होती। इसके लिए भीतर अपने सच्चाई को देखने को कार्य करना होता है। वह कैसे? इसे समझें-

इस साढ़े तीन हाथ की काया को भारत की पुरातन भाषा में लोक कहते थे, क्योंकि सारे लोक इसी में समाये हुए हैं। स्वर्ग भी इसी में है, नरख भी इसी में है। और सारे लोक भी इसी में हैं। लोको के परे भी जो लोकेत्तर निर्वाणिक अवस्था है वह भी इसी में है। भगवान महावीर कहते हैं-आयात चक्षु लोक विपरसी'। इस लोक में जो विपश्यना करता है उसे चक्षु मिल जाते हैं।

भगवान बुद्ध कहते हैं- ' पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्षुं उदपादि'- पहले सुना ही नहीं था ऐसे धर्म में, ऐसी सच्चाई में चक्षु प्राप्त हो गये । ढाई हजार वर्ष पहले भी भारत की आज जैसी हालत थी । हर महापुरुष धर्म सिखाता है तो सच्चाई सिखाता है। लेकिन धीरे-धीरे लोग सच्चाई का स्वयं दर्शन करना बंद कर देते हैं और सच्चाई की एक मान्यता मान लेते हैं।

हमारे महापुरुष ने ऐसा कहा, और हम उसे मान रहे हैं। मानने वाले जानेंगे कैसे? वे तो केवल मानने वाले हैं। जानना बंद कर दिया यानी स्वयं सच्चाई देखना बंद कर दिया। वह विद्या ही लुप्त हो गयी।

ढाई हजार वर्ष पूर्व भी धर्म के नाम पर न जाने क्या क्या मान्यताएं चलती थी। बुद्ध बनने से पहले इस व्यक्ति ने सारी बातें देखी कि लोग किसको धर्म कहते हैं। बुद्ध बनने से पहले इस व्यक्ति ने सारी बातें देखी कि लोग किसको धर्म कहते हैं। और फिर जब स्वयं भीतर की सच्चाई देखने लगा तो आंखें खुल गयीं- पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेषु चक्षुं उदपादि'-

ज्ञान का चक्षु खुल जाये। पहले ऐसा धर्म सुना ही नहीं। धर्म कुदरत के कानुन को कहते हैं, धर्म ऋत को कहते हैं, यह बात पहले कभी नहीं सुनी। संभव है पहले किसी ज्ञानी से, किसी मुक्ति ने, किसी बुद्ध ने यह बात अवश्य कही होगी लेकिन लोग भूल गये। उसका अर्थ ही भूल गये। जैसे आज भूल गये। धर्म को भूल गये तो ध्यान क्या करेंगे। यथार्थ का ध्यान कैसे होगा? यथार्थ का ध्यान शुरू किया तो सारी बात समझ में आ गयी। सारी बात समझ में आ गयी, तब कहा ज्ञान-चक्षु खुल गये। पुब्बे अननुस्सुतेसु - पहले कभी सुना ही नहीं, ऐसे धर्म में मेरी आंखें खुल गयी।

यही बात गीता भी कहती है। पर हम सुनना कहां चाहते हैं? 'विमुद्ध नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः' - जो मूढ़ लोग हैं वे विपश्यना कर ही नहीं पायेंगे। विपश्यना वही करेंगे जिनके ज्ञान-चक्षु खुल गये। ज्ञान चक्षु खुल गये तो विपश्यना शुरू हो गयी। विपश्यना शुरू हो गयी तो ज्ञान खुल गये। भीतर किससे देखता है? अपने ज्ञान से देखता है। भीतर कोई ऐसी आंखें नहीं हैं जो हमको अपना रूप दिखाने लगेगी। कोई रूप देखना भी नहीं है। भारत की पुरानी भाषा में 'देखना' का अर्थ था दर्शन करना, साक्षात्कार करना। यह रूप आकृति का दर्शन नहीं था, बल्कि स्वयं को जो अनुभव हो रहा है उसे देखना या उसका दर्शन करना होता था। वेदन अर्थात् अनुभूति या अनुभवन। अपने अनुभव से जो ज्ञान प्राप्त हो रहा है वह अपना दर्शन है। वह अपना साक्षात्कार है।

ऐसा साक्षात्कार करने की कोई विधि होनी चाहिए, कोई तरीका होना चाहिए। जिस आदमी के पास विधि नहीं है वह कैसे देखेगा कि भीतर क्या सच्चाई है? जैसे किसी आदमी के पास आंख ही नहीं, जन्म का अंधा है। उससे कहें कि देख यह काला रंग है, यह नीला रंग है, यह सफेद है- बेचारा कैसे देखेगा? कल्पना ही करेगा। भ्रान्ति में ही पड़ते रहेगा।

टेढ़ी खीर

अपने यहां एक कहानी चलती है। दो बहुत गरीब लड़के थे। दिन भर भीख मांग कर अपना पेट पालते थे। उनमें से एक जन्म का अंधा था। उसका साथी उसका हाथ पकड़ कर अपने साथ भीख मांगने के लिए ले जाता था। एक दिन ऐसा हुआ कि जो अंधा साथी था उसे बहुत तेज बुखार हो गया। उसके मित्र ने कहा-

तू जाने लायक नहीं। तू यही लेटा रह। मैं जाता हूं और भीख मांगता हूं। तेरे लिये भी ले आऊंगा।

वह निकल पड़ा। भीख मांगते हुए किसी एक घर के सामने खड़ा हुआ। धरवाली ने देखा इस बेचारे ने खीर शायद ही कभी खाई होगी। आज हमारे घर खीर बनी है। इसे खीर परोस

दे। खीर परोस दी। वह बड़ा खुश हुआ। इतनी स्वादिष्ट खीर मिली। खीर खाई और चला गया। उसने अपने मित्र से कहा-

भाई क्या बताऊं, आज तो भीख में बहुत स्वादिष्ट खीर मिली। मेरे पास कोई पात्र तो था नहीं। और खीर तो तरल होती है। रोटी होती तो हाथ में ही ले आता। पर खीर तुम्हारे लिए नहीं ला सका। दूसरे साथी ने पूछा,

- अच्छा ,ला तो नहीं सके , पर बताओ तो सही खीर कैसी होती है ?

तो पहला कहता है कि खीर सफेद हाती है।

दूसरा पूछता है, यह सफेद क्या होता है ?

तुझे नहीं मालूम सफेद क्या होता है ? वह बेचारा जन्म का अंधा , वह क्या जाने सफेद क्या होता है। जो काला नहीं होता वह सफेद होता है।

तो बताओं काला क्या होता है ?

तुझे काला नहीं पता ,तुझे सफेद भी नहीं पता ,तू कैसा आदमी है ?

मुझे तो नहीं पता, तू समझा दे कैसा होता है ? पास कहीं बगुला खड़ा था, उसे पकड़ लाया और कहा,

देख सफेद ऐसा होता है। बेचारा अंधा साथी क्या देखे!

वह तो बस हाथ से टटोलना जाने। उस पक्षी को टटोलता है और कहता है,

अब समझ गया कि सफेद कैसा होता है। सफेद बड़ा मुलायम-मुलायम होता है।

मुलायम और खुदरे में क्या लेना देना! सफेद सफेद होता है, इस बगुले की तरह सफेद होता है , इस बगुले की तरह सफेद होता है।

- तूने कहा इस बगुले की तरह सफेद तो सही । खीर इस बगुले जैसी सफेद होती है

अरे नहीं भाई तू समझ तो सही । खीर इस बगुले जैसी सफेद होती है। तो बेचारा फिर उस बगुले को पकड़ कर देखता है। उसकी चोंच से लेकर सारे शरीर पर हाथ फेरते फेरते कहता है कि

अब समझ गया सफेद टेढ़ा होता है तरी खीर टेढ़ी है

तब से लोगो के लिए टेढ़ी खीर होना मुहाबरा बन गया।

सत्य की अनुभूति

यह काम शुरू करने के लिए जैसे पहले बताया था, वैसे करना होगा। बैठ गये और आंखे बंद कर ली क्योंकि हमें कोई रूप या आकृति नहीं देखनी है। मुंह से कुछ बोलना नहीं है। कोई उच्चारण नहीं करना है। अतः मुंह भी बंद। हमें अनुभव करना है। अनुभूति पर क्या सच्चाई उतर रही है। बस उसी के सहारे चलना है। मुंह बंद है। आंखे बंद है। शरीर से कोई काम नहीं कर रहें। वाणी से कोई काम नहीं कर रहें। अब देखे क्या घटना घट रही है। इस क्षण क्या घटना घटी? श्वास भीतर आ रहा है यह घटना घटी। श्वास बाहर जा रहा है यह घटना घटी। बस तथस्ट भाव से उसे यथाभूत देखने लगें। यदि श्वास की कसरत शुरू कर दी तो यथाभूत नहीं यथाकृत हो जायेंगे।

बस यों बैठे हुए श्वास को देख रहे हैं। श्वास का रूप-रंग देखने के लिए नहीं, बल्कि अनुभव करने बैठे हैं। श्वास को अनुभूतियों से जानने के लिये बैठे हैं और श्वास को जानते जानते अपने चित्त के बारे में भी कई बातें प्रकट होने लगीं। कैसे चित्त लिये चल रहे हैं। यह कितना डावाडोल है। जब देखो तब भूतकाल में रमण करता है या भविष्य में रमण करता है। यह वर्तमान में रहता ही नहीं। भूत में रमण करे या भविष्य में रमण करें, जब जब रमण करता है और सुखद चिंतन चलता है तो उसका दुख भोगने लगता है। भोक्ताभाव ही भोक्ताभाव है। दुख भोगता है तो द्वेष पैदा करता है, सुख भोगता है तो राग पैदा करता है। आसक्ति पैदा करता है इसलिये बड़ा व्याकुल है। राग पैदा करता है तो व्याकुल हो जाता है। द्वेष पैदा करता है तो व्याकुल हो जाता है। यह सच्चाई पुस्तकों की सच्चाई नहीं है। गुरु महाराज की वाणी की सच्चाई नहीं है। यह अपने चिंतन की भी सच्चाई नहीं है। यह अपने अनुभूति की सच्चाई है।

धर्म चिंतन से प्राप्त नहीं होगा। जिंन जिंन संता ने धर्म का साक्षात्कार किया, उनकी वाणी देखते हैं तो पता लगता है कि और कुछ नहीं, वे विपश्यना ही कर रहे थे। भारत का एक संत कहता है- सोचै यानी सुचि करे, शुद्ध करें। लाख बार शरीर की शुद्धि करे, उसे साफ करे इससे सही अर्थ में शुद्धि नहीं होगी, मुक्ति नहीं होगी। जब मन की शुद्धि होगी तभी सही अर्थ में मुक्ति होगी।

देखते जाओगें देखते जायेंगे। दो दिन बीतेगें, तीन दिन बीतेगें। बीतते बीतते देखेंगे अब मन जरा जरा शांत होने लगा। साधक शिविर में आता है तो पहले दिन उसका भागने को जी चाहता है। कहां फँस गया? किसकी बातों में आ गया? हमारे उस मित्र ने कह दिया- बड़ा आनंद आयेगा। ध्यान करोगे तो बड़ा आनंद आयेगा और हम यहां चले आये। आनंद का तो नामोनिशान नहीं, बल्कि दिनभर बैचेनी ही बैचेनी, अंशान्ति ही अंशान्ति है।

हमें मन का स्वभाव पलटना है और वह अपना स्वभाव पलटना नहीं चाहता। वह तो हमेशा भूतकाल में रमण करने वाला या भविष्य में रमण करने वाला है और हम कहते हैं वर्तमान में जीना है, इस क्षण में जीना है। मन को यह अच्छा नहीं लगता। वह बड़ा विद्रोह करता है, इसलिये पहले एक दो दिन भागने को ही जी चाहता है। फिर तीन दिन होते होते, चार दिन होते होते शांत होने लगता है। पूर्णतया शांत नहीं होता, फिर भी शांत होने लगता है। श्वास की सच्चाई देख रहे थे, श्वास के प्रवाह की सच्चाई देख रहे थे। यथाभूत बिना नियंत्रण वाला श्वास देख रहे थे। उसके सहारे सहारे चित्त का स्वभाव देखने लगे। विकार जागते हैं तो श्वास अपनी स्वाभाविकता खाने लगता है। और जब विकार दूर हो जाने लगते हैं। तो श्वास फिर स्वाभिक हो जाने लगता है। यह बात समझ में आने लगी-अपनी अनुभूतियों से समझ में आने लगी।

विपश्यना

अब और आगे बढ़ना है। उससे और सूक्ष्म सत्य क्या है? यह जानने के लिये शरीर के भीतर की गहराईयों में जाना है। चित्त की गहराई अपने भीतर है, बाहर नहीं, इसलिये हमें शरीर के भीतर यात्रा शुरू करनी है। शरीर के दरवाजे पर तीन दिन खड़े रहे। यह दरवाजा है, चौखट है, देहलीज है। इस देहलीज पर खड़े रहें। अभी अन्दर जाने लायक नहीं थे। इसलिये तीन दिन बितायें। चौथा दिन होते होते अंदर जाने लायक हो गये।

अंदर जाने लायक कैसे हो गये? क्योंकि अपने बारे में सच्चाई जानने की एक विद्या प्राप्त होने लगी। ज्ञान चक्षु प्रज्ञा चक्षु प्राप्त होने लगे। कोई रूप देखने वाला चक्षु नहीं, अनुभव करने वाला चक्षु। अब देखते हैं नासिका के ईर्द गिर्द -नासिका के भीतर, नासिका के ऊपर नासिका के नीचे इतनी सी दूरी में और भी कई घटनाएं घट रही हैं। सांस की घटना घट रही है। यह सत्य है पर बड़ा स्थूल सत्य है। उससे और सूक्ष्म घटना क्या घट रही है? देखते हैं यहां कभी गर्मी सी मालूम होती है। कभी पसीना सा मालूम होता है। कभी शीतलसा सी मालूम होती है। कभी कोई खुजलाहट सी मालूम होती है। कभी कोई गुदगुदाहट सी मालूम होती है। नासमझ होता है तो कहता है इसको क्या देखे? गर्मी तो ऐसे ही होती है, सर्दी तो ऐसी ही होती है। यह धड़कन या खुजलाहट -इन सब को क्या देखे? समझदार होता है, तो जानता है सच्चाई प्रकट हुई है। शरीर ने हमारे सामने अपना धर्म प्रकट किया है। यानी शरीर ने अपना स्वभाव प्रकट किया है। देख! गरमाता भी हूं यह मेरा स्वभाव है। देख मे शीतल भी होता हूं यह मेरा स्वभाव है। देख! मैं धड़कता भी हूं, फड़कता भी हूं, मुझमें खुजलाहट भी होती है, गुदगुदाहट भी होती है सुरसुराहट भी होती है। यह स्वभाव है। और हमें तो स्वभाव का दर्शन करना है। हमें धर्म का दर्शन करना है। इसको टुकरा दे। इसे ही देखते जाना।

नासमझ होगा तो प्रतिक्रिया करेगा। पसीना आया तो अच्छा नहीं लगा, जल्दी से पौछ। गर्मी महसूस हुई तो अच्छा नहीं लगा, तुरंत पंखा खोला। यही तो पुरानी आदत थी। अपने

शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को , दुःख हो तो दूर करने की पुरानी आदत, सुख हो तो बनाये रखने की पुरानी आदत थी। यही तो भोक्ता भाव की पुरानी आदत थी। उसको हम द्रष्टा भाव से कैसे बदलें? यह सीखने आये हैं। यह होश आते ही देखना शुरू कर दिया। जो जो घटनाएं यहां घट रही हैं, उन्हें देखने लगे।

चार दिन बीतते-बीतते तो सारे शरीर में भिन्न-भिन्न घटनाएं प्रकट होने लगीं। सारे शरीर में खदबद-खदबद, बुदबुद-बुदबुद, सुरफुर-सुरफुर कुछ ना कुछ होता ही रहता है। गरमाता है, पसीजता है, शीतल होता है, धड़कल होती है, फड़कन होती है, खुजलाहट होती है, गुदगुदाहट होती है आदि आदि । इसी को देखना है। तटस्थ भाव से इसे देखते जाना है। और भोक्ता भाव दूर करना है।

कहना बड़ा आसान है, पर तटस्थ भाव से देखना बड़ा कठिन काम है। जब काम करने लगेगे तब पता लगेगा कि पुरानी आदत तुरंत सिर पर सवार हो जाती है। प्रतिक्रिया करते हैं। कोई संवेदना बुरी लगी, उसको दूर करने की कोशिश करते हैं। यह पुरानी आदत है। अब इस पुरानी आदत को पलटना है। धीरे-धीरे पलट रहे हैं। जो आदमी जितनी जल्दी जैसा है वैसा देखने लगे, उसकी प्रगति उतनी ही आसान हो जाती है। जो आदमी इस विद्या के अनुसार अपनी मान्यता जोड़ने लगता है तो उसकी प्रगति धीमी पड़ जाती है। रुक भी जाती है। अरे यह तो साधारण अनुभूति है इसको क्या देखे। ये सुरसुराहट धड़कन फड़कन गर्मी आदि होती ही रहती है। इनको क्या देखे। हमें कोई आत्मा का दर्शन कराये। परमात्मा का दर्शन कराए। शाश्वत का ध्रुव का अमृत का दर्शन कराएं। बेचारा नहीं समझता। कि उसी दर्शन करने का काम कर रहे हैं। जो अनित्य है वह हमारे लिए नित्य तक पहुंचने में बाधक बन गया है क्योंकि जो अनित्य है उसके प्रति हमने कितना गहरा तादात्म्य स्थापित कर लिया है

बुद्धि के स्तर पर खूब स्वीकारते हैं कि यह शरीर में नहीं हूं, यह शरीर मेरा नहीं है यह शरीर मेरी आत्मा नहीं है। इसी प्रकार यह चित्त मैं नहीं हूं, यह चित्त मेरा नहीं है। यह चित्त मेरी आत्मा नहीं है। खूब मानते हैं। क्योंकि बचपन से सुनते आये हैं। शरीर भिन्न है आत्मा भिन्न है। यह मान्यता हुई । सच्चाई क्या है? अब सच्चाई देखने लगे कि ऊपर से हजार कहते लगे कि यह शरीर ही में हो गया है। इस शरीर के प्रति कितना तादात्म्य भाव है। इतनी गहरी आशक्ति कायम है। तब तक मुंह से भले कहता रहे आत्मा नित्य शाश्वत ध्रुव है; निर्वाण नित्य, शाश्वत ध्रुव है। इसी के प्रति राग, द्वेष करने लगे। यह बंधन तोड़े बिना नित्य तक कैसे पहुंचेगा ?

प्रकंपन ही प्रकंपन

इसलिए महापुरुषों ने संतो ने बुद्धों ने अरहंतों ने कहा देख जैसा है वैसा देख। जो सच्चाई सामने आ रही है उसे देखते जा। देखते जायेगे यानी बिना प्रतिक्रिया करे अनुभव करते जायेगे। तो शरीर के बारे में बहुत सी सच्चाईयां सामने आनी शुरू हो जायेगी। काम शुरू करेंगे तो यह सारा शरीर बड़ा ठोस मालूम होगा, बड़ा धनीभूत । सिर कितना ठोस है। और

भी जहां देखो, वही ठोस है। हड्डियों का ढांचा ठोस है। और भी जहां देखो वहां ठोस है। देखते-देखते यह ठोस पना अपने आप टूटता जायेगा। यह घनत्व टूटता जायेगा और एक अवस्था ऐसी आयेगी जब सारा का सारा शरीर टुकड़े-टुकड़े हो कर ऐसा अनुभव होगा कि यह केवल परमाणुओं का पुंज है और कुछ नहीं है। कल्पना की बात नहीं, यह अनुभूति पर उतरने लगेगा। किसी किसी को दस ही दिन के शिविर में उतरने लगता है। जो व्यक्ति इस विद्या को जितनी जल्दी समझकर जितना ठीक काम कर रहा है उतनी जल्दी उसके परिणाम आते हैं।

ऐसा अनुभव होता है कि सारे पदार्थ जिनसे यह शरीर बना है उनमें कोई भी ठोस नहीं है। बाहर-भीतर सर्वत्र केवल परमाणुओं का ही पुंज है। ठोस लगाता है परंतु सिर्फ परमाणु ही परमाणु है। और परमाणु भी कैसे? उनमें भी ठोस पना नहीं। एक नन्हें से नन्हा परमाणु भी ठोस नहीं है। वह भी केवल तरंग ही तरंग है। तरंग ही तरंग है। अब यह सच्चाई अनुभूति पर उतरने लगी। और हम यों उस सच्चाई के दर्शन करने लगे।

आज के वैज्ञानिक भी यही कहते हैं। करीब एक शताब्दी पहले पश्चिम के वैज्ञानिक इस सच्चाई को मानने लगे थे कि इस भौतिक जगत में कहीं कोई ठोसपन्न नहीं है; केवल तरंगे ही तरंगे हैं। और अब इस सच्चाई को हम भी जान गये हैं। बाहर भी कहीं ठोस पने का नामोनिशान नहीं है। ठोस जैसा लगता है। यह प्रकट सत्य है कि ठोस है। लेकिन सही परमार्थ सत्य यही है कि सब कुछ केवल तरंगे ही तरंगे हैं।

केवल प्रकंपन ही प्रकंपन है और कुछ भी नहीं। यह केवल सिद्धांतों की मान्यता नहीं अनुभूतियों उतरने वाला सत्य है।

इस सच्चाई को पश्चिम के वैज्ञानिक मानने लगे थे कि सारा भौतिक जगत परमाणु कणों से बना हुआ है और प्रत्येक परमाणु कण केवल तरंग ही तरंग है। जो प्रति क्षण उत्पन्न होती है और नष्ट होती है। इसलिये एक वैज्ञानिक के मन में इस बात की शोध करने की इच्छा हुई कि इस नन्हे से नन्हे परमाणु कण का एक सेकण्ड में कितने वार उत्पाद और व्यय हो जाता है? इसमें कितनी बार तरंग उत्पन्न होती है, नष्ट होती है? बड़ा समय लगा और उसने एक यंत्र तैयार किया। उसका नाम रखा बबल चैंबर।

नोबल पुरस्कार विजेता यह अमरीकी वैज्ञानिक बुदबुदो को कोष बना कर उसके जरीए मालूम करता है कि भौतिक जगत के नन्हे से नन्हे परमाणु-कण में एक सेकण्ड में एक के आगे बाईस बिंदी लगायें इतनी बार तरंगे उठती हैं; वह इतनी बार उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। भारत को एक महापुरुष इसी सच्चाई को अनुभूति से देख कर कहता है। बात तो वही है लेकिन कितना बड़ा अंतर है। भारत का यह वैज्ञानिक अपने भीतर इस सच्चाई को देखकर बुद्ध बन गया, मुक्त बन गया। वह संसार के सारे दुखों के पार चला गया। उसका चित्त नितांत निर्मल हो गया। परंतु इस वैज्ञानिक को क्या हुआ? वैसा का वैसा रहा। शिविरों में पश्चिम के बहुत से लोग आते हैं। इस बर्फले शहर के साधक उसे प्रोफेसर के घर जाकर उससे मिलते हैं। उससे मिल कर मुझे लिखते हैं कि वह तो बहुत व्याकुल है। उसके जीवन में बहुत तनाव

है। व्याकुल तो होगा ही। जो व्यक्ति परमाणु शस्त्र बनाने में सहयोग देता है और जो पहला रमाणु शस्त्र गिराता है उसका नतीजा देखने के लिये उस हवाई जहाज में साथ जाता है, उसकी मनोस्थिति कैसी होगी? बड़ा दुखियारा होगा, बड़ा व्याकुल होगा, उसके भीतर बड़ा तनाव होगा। ऐसा क्यों हुआ? उसी सच्चाई तक वह भी पहुँचा। उसी सच्चाई तक बुद्ध भी पहुँचे। दोनो में यह अंतर क्यों आया? अंतर इसलिये आया कि बुद्ध ने सच्चाई अपनी अनुभूति से जानी। वैज्ञानिक की सच्चाई का आधार उसका यंत्र है उसकी बुद्धि है। वह अपनी बुद्धि के द्वारा मान रहा है। अपने यंत्र के सहारे मान रहा है कि नन्हें से नन्हे परमाणु कण का एक संकेण्ड में इतनी बार उत्पाद-व्यय होता है। यह बात बुद्ध ने अपनी अनुभूति से जानी और अपने जीवन में उसका उपयोग किया। बड़ा अंतर है।

कैसा अंतर है? अनुभूति से जानने के लिये हम जो यात्रा करते हैं, उस यात्रा का हर कदम हमारे चित्त के स्वभाव को पलटना है। हमारे चित्त का स्वभाव जितना पलटेगा यात्रा उतनी गहरी होगी। यानि चित्त निर्मल होता जायेगा तो उससे ज्यादा सूक्ष्म सच्चाई प्रकट होती जायेगी। चित्त और अधिक निर्मल होगा तो और सूक्ष्म सच्चाई प्रकट होगी। भारत में यह काम चित्त को निर्मल करने के लिये किया जाता था; कोई जिज्ञासा पूर्ति करने के लिये नहीं कौतूहल पूरा करने के लिए नहीं। भारत के ऋषि मुनियों को कौतूहल पूरा करने की जिज्ञासा नहीं थी। वे मुमुक्षु थे, यह जानने के लिये कि कैसे मुक्त हुआ जाय? बंधन कैसे बंधते हैं और कैसे खुल सकते हैं?

इस प्रकार भीतर का सारा काम भौतिक जगत देख जायेंगे। देखेंगे किस कदर सर्वत्र तंरगे ही तंरगे, तंरगे ही तंरगे है। इसी प्रकार चित्त को देखेंगे। आरंभ करते-करते किसी बात पर क्रोध आया तो भाववेश से भरा हुआ बहुत धनीभूत हो कर आया। हम उसे देखते गये

देखते गये। देखते हैं क्रोध आया अथवा वासना जागी अथवा भय जागा, केवल देखते हैं, उसमें डूबते नहीं। देखते-देखते उसके भी टुकड़े होन लगे। यानी चित्त के भी टुकड़े होन लगे। जैसे शरीर के टुकड़े करते करते उन सूक्ष्म तरंगो तक पहुँच गये, वैसे ही चित्त पर जो चित्तवृत्तियां जागती हैं, चित्त पर जा विकार आते हैं उनके भी टुकड़े करते करते देखेंगे कि यहां भी तंरगे ही तंरगे है।

भीतर की यह सच्चाई समझ में आ जाती है तो कुदरत का सारा रहस्य समझ में आने लगता है। कैसे नाम और रूप की पारस्परिक प्रतिक्रिया हुए जा रही है। नाम और रूप मन और शरीर कैसे एक दूसरे को प्रभावित किये जा रहे हैं। यह सारी बात समझ में आने लगेगी। इसी को भारत में आत्म दर्शन कहते थे स्व दर्शन कहते थे सत्य दर्शन कहते थे अपने बारे में सच्चाई को अपने भीतर अनुभूतियों से जानना कि कैसे गांठे बांधे जा रहे हैं और समझना कि कैसे गांठे खोली जा सकती हैं। इन गांठों के बंधने से जाने, बंधने के कारण को जाने, और उसका निवारण करें ग्रंथिया खुलती चली जायेंगी मुक्त होते चले जायेंगे।

जब यह सच्चाई साधक जब स्वयं अपने भीतर देखना शुरू करता है तो एक उंची अवस्था पर जा कर, उसें शरीर के एक एक कण का एक एक कलाप को एक एक परमाणु

का वह अलग अलग अनुभव कर पाता है। इसी प्रकार चित्त के टुकड़े करके देख लेता है कि 121 प्रकार के चित्त है और 52 प्रकार की चित्तवृत्तियां है। एक वैज्ञानिक की तरह विश्लेषण करता है कि इस क्षण कैसा चित्त उत्पन्न हुआ और उस चित्त के साथ कैसी चित्तवृत्ति उत्पन्न हुई? यों करते-करते सारा रहस्य समझ में आ जायेगा। बहुत दूर की यात्रा है। परंतु आरंभ में इतना ता होने ही लगेगा कि शरीर का ठोसपना समाप्त हो गया। केवल तरंगे ही तरंगे अनुभूत होने लगी। यह गुरु महाराज के प्रवचनों से या पुस्तकों से या बुद्धि विलास या वाणी विलास से समझ में आने वाला नहीं है। अनुभूतियों के सहारे ही सब मालूम होने लगेगा। सारा शरीर केवल तरंगे ,तरंगे रह जायेगा।

छह दरवाजे

बाहर की दुनिया से हमारा संपर्क कैसे होता है? पांच दरवाजो है- आंख कान नाक जीभ और त्वचा जिनके द्वारा हमारा बाहर की दुनिया से संपर्क होता है। इन पांच इंद्रियों की वजह से ही दुनिया हमारे लिए दुनिया है अन्यथा हमारे लिये दुनिया नहीं । जिस आदमी के पास जन्म से ही कान न हो, सुनने की शक्ति न हो, उसके लिए शब्द का कोई संसार नहीं। उसे कितना ही समझाने की कोशिश करे की शब्द ऐसा होता है, वैसा होता है, समझेगा ही नहीं। जो आदमी जन्म से अंधा है उसे कितना ही समझाने की कोशिश करे की रूप ऐसा होता है रंग ऐसा होता है, रेशनी ऐसी होती है, समझ ही नहीं पायेगा। उसके लिये रूप रंग का संसार ही नहीं। इसी प्रकार अगर नाक न हो गंध का कोई संसार नहीं।

अपने आप की खोज करने वाला व्यक्ति यही खोज शुरू कर देगा कि देखें भीतर क्या हो रहा है? क्या प्रपंच चल रहा है? देखेगा की आंखे भी तरंग ही तरंग है। कान, नाक, जीभ सारी त्वचा तरंग ही तरंग है। चित्त भी तरंग ही तरंग है। वह इस अवस्था पर पहुंच गया जहां अपने भीतर की हर तरंग को अपने अनुभव से जानने लगा। अब यदि कान पर कोई शब्द टकरायेगा तो जानेगा कि जो शब्द टकराया है वह केवल तरंग ही तरंग है, और कुछ नहीं। जीभ पर कोई रस तो टकराया या नाक पर कोई गंध तो टकराई तो जानेगा तरंग ही तरंग है। तब खुब समझ में आ जायेगा कि ये छही दरवाजे तरंग ही तरंग है।

यह सच्चाई हमारे ऋषियों ने कही या एक वैज्ञानिक कहता है या अमुक पुस्तक कहती है इसलिये नहीं मान लेना है। अपनी अनुभूति से जानना है कि केवल तरंग ही तरंग , प्रकम्पन्न ही प्रकम्पन्न है। भले तरंग गहरी ही है। सारा संसार प्रकंपन है, तरंग ही तरंग है। यह बात अनुभूति से अच्छी समझ में आ जायेगी।

मानस के चार खंड

इस अवस्था पर पहुंचा हुआ साधक आंखे बंद करके बैठा है और शरीर पर होने वाली घटनाओं को देखता है। कान में कोई शब्द आया, तो देखता है तरंग से एक तरंग टकराई। तरंग से तरंग टकराई तो एक नयी तरंग उत्पन्न हो गयी। सारा शरीर कांसे के बर्तन जैसा हो

गया। साधन इतना संवेदनशील हो जाता है कि कान पर कोई तरंग टकराई तो जैसे किसी कांसे के बर्तन को छोड़ दिया। जंहा छेड़ दिया वहा तो टंकार पैदा हुई, उसके साथ सारे बर्तन में भी झंकार पैदा हो गयी। वह जो बाहर की तरंग कान से टकराई और जिसने यहा झंकार पैदा हो गयी। उसने सारे शरीर को तरंगीत कर दिया। इसी प्रकार आंख से कोई रूप टकराया और सारे शरीर में तरंग पैदा हो गयी। नाक पर गंध टकराई, या जीभ पर कोई रस टकराया, या शरीर पर कोई पदार्थ टकराया, या मन पर कोई चित्तंन टकराया कि सारे शरीर पर एक नई तरंग पैदा हो गयी।

यह एक घटना घटी। अब आगे क्या होता है? एक शब्द आया, कान को लगा, एक तरंग उत्पन्न हुई। इसके बाद नाम और रूप यानी मन और शरीर की क्या प्रतिक्रिया चलती है? इस प्रक्रिया का एक वैज्ञानिक की तरह अनुसंधान करता है तो वह ऋषि होता है, मुनि होता है, बुद्ध होता है, अरहंत बन जाता है। कल्पना में डूबता है तो कुछ नहीं बनता, धोखे में रह जाता है। आगे की प्रतिक्रिया जानने लगा तो देखता है मानस का एक खंड सिर उठा कर कहता है कि कुछ खटपट हुई। आंख पर रूप टकराया तो मानस का यह पहला खंड कहता है कि यहां कुछ खटपट हुई। इसी प्रकार नाक से गंध टकराई, या जीभ से रस टकराया, या त्वचा से कोई पदार्थ टकराया या मन में कोई चित्तंन टकराया तो मानस या चेतना का यह पहला खंड कहेगा कि कुछ हुआ। बस इतना ही कहेगा। यह खंड और कुछ नहीं जानता। सिर्फ इतना ही जानता है कि कुछ हुआ। मानो उसने हमें सावधान कर दिया कि कुछ हुआ।

इतने में मानस का दूसरा खंड अपना सिर उठायेगा। उसका काम यह है कि अब तक की जो अनुभूतियां हैं और अब तक की जो योगदान हैं उसके आधार पर वह पहचानता है और उसका मूल्यांकन करता है। शब्द आया तो पहले खंड ने कहा कि कान पर कुछ खटपट हुई। कोई शब्द आया। क्या शब्द आया? किसी पुरुष का किसी नारी का है, प्रशंसा का है पर इतना कहकर नहीं रहजाता।

अपने पुराने अनुभवों के आधार पर, पूर्व संयोजित संस्कारों के आधार पर वह उसका मूल्यांकन करता है। गाली का शब्द है। अरे बहुत बुरा। तो मानस का यही हिस्सा कहता है बहुत बुरा। देख यह गाली है, बहुत बुरी है। प्रशंसा आई तब भी केवल एक शब्द की तरंग ही आई। लेकिन मानस के इस खंड ने कह दिया-यह प्रशंसा है और बहुत अच्छी है। इस प्रकार मानस के दूसरे खण्ड ने अपना काम शुरू कर दिया। उसने कह दिया कि गाली है या प्रशंसा है। उसने यह भी कह दिया कि अच्छी है या बुरी है।

मानस के दूसरे खंड के काम करते ही एक घटना और घटने लगी। मन और शरीर एक दूसरे पर इतना आधारित है और यह घटना इतनी शीघ्रता से घटती है कि एक बार में करोडो बार हमारे मन के भीतर में हजारो घटनाएं घट जाती हैं। आगे क्या हुआ? जब शब्द की टंकार आई थी और उसकी बजह से तरंग की संवेदना सारे शरीर में फैली थी, तब वह संवेदना न तो सुखद थी न तो दुःखद। लेकिन जैसे ही मानस के दूसरे खण्ड ने कह दिया कि यह गाली है, और बहुत बुरी है तो यह अदुःखद अ सुखद संवेदना में बदल गयी। इसी प्रकार

जब मानस का यह खण्ड कहता है कि यह प्रशंसा है, बहुत अच्छी है तो जो सुखद असुखद संवेदना चली थी वह संवेदना चली थी, वह संवेदना बड़ी सुखद दुखद हमने ही बनाया। यह काम मानस के तीसरे खंड ने किया, जो संवेदनशील है।

आगे क्या हुआ? अब देखेगा कि मानस का चौथा खंड सिर उठाने लगा। जहां शब्द आया और पहचाना कि गाली है और उसकी वजह से दुखद संवेदना चली, वहां कहेगा- “नहीं चाहिए, मुझे बिल्कुल नहीं चाहिए। यह गाली जल्दी बंद कर, यह गाली मुझे नहीं चाहिए।”

और जहां शब्द आया और पहचाना कि प्रशंसा है, बहुत अच्छी है तो सुखद संवेदना चलने लगी। अब मानस का यह चौथा खंड कहने लगेगा -यह प्रशंसा तो और चाहिए, और चाहिए। यह जो नहीं चाहिए, नहीं चाहिए करने लगा, भारत की पुरानी भाषा में उसी को द्वेष कहते थे। यह जो चाहिए चाहिए करने लगा, भारत की पुरानी भाषा में उसी को राग कहते थे।

छहो दरवाजो पर कुछ न कुछ खटपट होती ही रहती है और हमारे मानस का बावला हिस्सा उसको पहचान कर मूल्यांकन करता रहता है-अच्छ है बुरा है। उसकी वजह से संवेदनाये सुखद होती है और इसके कारण हम अपने अंधे पन में राग पैदा करते है या द्वेष पैदा करते है। राग पैदा करते है तो व्याकुल हो जाते है। हमने अपनी क्या हालत बना ली। अपने भीतर कभी देखा ही नहीं, इसलिए यह हालत बना ली।

ऊपर ही ऊपर सचेतन मन के स्तर पर क्या हो रहा है? किसी ने गाली दी, सचेतन मन ने गाली सुनी, उसे गुस्सा आया और बदले में हमने भी गाली दे दी या हाथ उठा दिया। सचेतन मन को यह पता नहीं कि हमने जब बदले में गाली दी या हमने जो हाथ उठाया-इस बीच भीतर कितनी घटनाएं घट गयीं। हमारे भीतर क्या-क्या घटना घटी हमने कभी देखा ही नहीं। सत्य का दर्शन ही नहीं किया। सत्य का दर्शन नहीं किया तो धर्म का दर्शन नहीं किया। धर्म का दर्शन नहीं किया तो मुक्ति का दर्शन नहीं किया।

मानस का वह अंधा स्वभाव जो केवल प्रतिक्रिया करना जानता है, उसे जहां सुखद अनुभूति होगी वहां राग की प्रतिक्रिया करेगा, जहां दुखद अनुभूति होगी वहां द्वेष की प्रतिक्रिया करेगा। अब यह सच्चाई घर का मालिक जागता है उस घर में चोर नहीं आते। घर का मालिक जाग रहा है इसलिए डरते है। भूले चूके आ भी गये और देख लिया कि मालिक जाग रहा है, तो भाग जायेंगे, ठहरेगे नहीं। ऐसे ही भीतर की जागृति आयेगी तो चोर आयेगा ही नहीं। कोई शब्द आयेगा तो तुरंत होश जागेगा- तरंग आई है। इसका मूल्यांकन हुआ है। मूल्यांकन सुखद हुआ तो देखा सुखद तरंग चली। इसे देखते है यह कितनी देर रहती है। देखते-देखते सुखद तरंग चली।

विद्या और अविद्या

हम अंतर्मन की गहराइयों में अपने स्वभाव-शिकंजे में पकड़े गये है। ऊपर से यह खूब समझते है कि क्रोध नहीं करना चाहिए, आसक्ति नहीं करनी चाहिए, अंकार नहीं करना चाहिए, द्वेष नहीं करनी चाहिए। फिर भी किये जा रहे है। क्यों किये जा रहे है? क्योंकि जहां इनका उदगम होता है जिसके कारण प्रतिक्रिया विकार पैदा करते है। जब तक जीवित है

भीतर ही भीतर प्रतिक्षण कुछ न कुछ अनुभव होता रहता है। सोते जागते सारे शरीर में प्रतिक्षण कोई न कोई घटना घटती रहती है। सारे शरीर में, शरीर के अणु-अणु में कोई न कोई संवेदना होती रहती है। संवेदना सुखद होती है या दुखद होती है। और यह बावला मन, मन का वह हिस्सा जो प्रतिक्रिया करने वाला है, चौबीसो घंटे प्रतिक्रिया करता रहता है-राग या द्वेष की। इसका होश नहीं रहता इसीलिए कहा गया है कि मोह-मूढ़तावश प्रतिक्रिया करता है। मोह है, इसका मतलब अंधकार है। हमारे चेतन मन को पता तक नहीं कि अचेतन मन क्या कर रहा है? भीतर ही भीतर राग पैदा कर रहा है। भीतर ही भीतर द्वेष पैदा कर रहा है। हमारे चेतन और अर्धचेतन या अचेतन मन के बीच बहुत मोटी दीवार आ गयी है। इसी को भारत की पुरानी भाषा में अज्ञान या अविद्या कहा क्योंकि होश नहीं है। होश नहीं है भीतर क्या हो रहा है। उन दिनों की भाषा में चेतन मन अर्धचेतन मन या अचेतन मन ये शब्द इस्तेमाल नहीं होते थे क्योंकि वास्तविकता यह है कि अचेतन कुछ नहीं है। भीतर तक का अचेतन कहा जाने वाला मन भी बड़ा चेतन है। पर अपने बावलेपन के कारण केवल संवेदनाओं के प्रति चेतन है और प्रतिक्रिया किये जा रहा है। इसके अलावा उसे कुछ होश नहीं।

बौद्धिक स्तर पर यानी चेतन मन के स्तर पर हम खूब समझते हैं कि है कि यह अनित्य है, नश्वर है। पर यह समझ हमारे अंतर्मन की गहराई तक नहीं पहुंच पाती क्योंकि बीच में दीवार खड़ी हुई है। एक उदाहरण से समझें। रात को सो गये। कौन सो गया? जिसको चेतन मन कहते हैं वह सो गया। भारत की पुरानी भाषा में इस चेतन मन को परित्त चित्त कहते हैं, अर्थात् परिमित चित्त है,छेटा सा चित्त है। यह परित्त चित्त मुश्किल से पांच प्रतिशत होगा, बाकी 15 प्रतिशत चित्त अंधा ही अंधा है। यह 5 प्रतिशत वाला हिस्सा है वह नहीं सोता। एक क्षण भी नहीं सोता। एक क्षण भी नहीं सोता। वह सारी रात इस शरीर में कब, कहां क्या संवेदना चल रही है उसका अनुभव किये जा रहा है। और अनुभव ही नहीं किये जा रहा, प्रतिक्रिया भी किये जा रहा है। गहरी नींद में सोये हैं और किसी मच्छर ने आकर काट लिया। हमारे चेतन मन या कहते हैं वह बड़ा सजग है। इस गहरी नींद में भी वह तुरंत प्रतिक्रिया करता है, उस मच्छर को उड़ा देता है या मार देता है। और वहां जो दुखद संवेदना चल रही है उसे खुजलाता है, उसे दूर करता है। सारी रात न जाने कितनी बार मच्छरों ने काटा और कितनी बार हमारे अचेतन मन ने प्रतिक्रिया की। सुबह कोई पूछे कि तुझे रात को मच्छर ने कितनी बार काटा- तो क्या जवाब दे। बीच में मोटी दीवार है। हमें ही नहीं हमारा अचेतन मन रात भर क्या कर रहा था?

यह केवल रात को ही नहीं, चौबीसों घंटे चलती रहती है। जब तक विपश्यना द्वारा अपने अंदर के चक्षु न खुल जायं, भीतर का ज्ञान न आ जाय, भीतर की सच्चाई को देखने का अनुभव न होने लगे, तब तक यह हालत बनी रहती है। एक उदाहरण से समझें। जैसे मान लो मैं विपश्यी साधक नहीं हूं। मैंने कभी विपश्यना नहीं की, तो क्या होगा? बोल रहा हूं, प्रवचन दे रहा हूं। अभी तक इतना बोला है, अब इसके बाद यह बोलना है, इसको ऐसे बताना है। और फिर लोगो के चेहरे देखता रहूंगा। मैं लोग उसमें रस ले रहे हैं कि नहीं।

कहीं अपनी घड़ी तो नहीं देखने लगे। कहीं जाने तो नहीं लगे। लोग जाने लगे तो बोलना जल्दी बंद करुं। मेरा सारा का सारा चेतन मन इन बाहर की बातों में लगा रहेगा। पर जो अचेतन है उन्हे इन सारी बातों से लेन देन नहीं है। वह तो केवल शरीर पर क्या संवेदना हो रही है, उसी ही जानेगा। बैठे हुए एक घंटा हो गया तो कहीं दबाव पड़ा और दबाव जरा ज्यादा हुआ तो मानस का वह हिस्सा कहेगा“ अरे, दबाव हो गया, नहीं अच्छा लगता मुझे ,जल्दी बदल”। आसन थोड़ा लूंगा। लेकिन बोले जाऊंगा और चेतन मन पूरा काम वैसा ही करता जायेगा। साथ देर से बैठे रहने पर जो पीड़ा हो रही है उसे दूर करने के लिए अचेतन शरीर के आसन को पलटता रहेगा।

किसी आदमी को पंद्रह मिनट तक देखते चले जाओ कि यह क्या करता है? दस मिनट भी नहीं बितेगें कि सभी शरीर के इस हिस्से को हिलायेगा, कभी उस हिस्से को हिलायेगा। क्यों मचक रहा है? यह क्या हो गया इसे? उसे खुद को पता नहीं कि उसे क्या हो गया। क्योंकि भीतर इतनी मोटी दिवार है, जिसका उसे पता नहीं। हम सिर्फ चेतन मन का पांच प्रतिशत का जीवन जीते हैं। 15 प्रतिशत वेदन हो रहा है परन्तु हमें अनुभव नहीं हो रहा। वेदन होता है और अनुभव होता है तो विद्या हुई। वेदन द्वारा ज्ञान हुआ-वेदन हो रहा है और हम जान रहे हैं। जान रहे हैं। इसके प्रति क्या द्वेष करे ? वेदन हो रहा है सुखद लग रहा है तो भी क्या प्रतिक्रिया करें? यह भी समाप्त होने वाला है। तो विद्या आ गयी। अनुभूतियों आधार पर अनित्य को अनित्य समझने लगे तो ज्ञान के चक्षु खुलने लगे। प्रज्ञा के चक्षु खुल गये बोधि के चक्षु खुल गये। जितना-जितना इसमें पुष्ट होते चले जायेंगे उतना-उतना मानस निर्मल होता चला जायेगा।

साधारणतया हम मानस को एकाग्र करने और निर्मल करने के लिए जितने काम करते हैं। जो आदमी इन गहरायों से सच्चाई को देखेगा, वह इन दोनों का अंतर खूब समझ जायेगा। हमने कोई जाप करना शुरू कर दिया या भजन कीर्तन शुरू कर दिया। हम किसी मंदिर में जाकर कर्मकांड कर आये, किसी मस्जिद में जाकर कर्मकाण्ड कर आये। हमने किसी गुरुद्वारे में जाकर के, किसी बौद्ध चैत्य में जाकर के यह कर लिया, वह कर लिया। यह सब किसने कर लिया। यह सब किसने कर लिया? हमारे चेतन मन ने कर लिया। चेतन मन कहता है यह कर, वह कर, उससे यह लाभ होगा, वह लाभ होगा; और हम किये जा रहे हैं। भीतर का अचेतन मन तो वैसा का वैसा है। उसको जहां दुखद लगता है वहां द्वेष पैदा करता है। उसको जहां सुखद लगता है वहां राग पैदा करता है। उसका स्वभाव तो पलटा ही नहीं। उसको पलटने का कोई काम भी नहीं किया।

यह सारी की सारी साधना उस धोखे से निकलने के लिए है। इसे अन्य साधनाओं की निंदा नहीं समझनी चाहिए। जब कोई व्यक्ति अध्यात्म के रास्ते चलना शुरू करता है, तब काम क ख ग घ से ही शुरू करेगा, कोई जाप करेगा। कुछ करेगा, जिससे थोड़ा तो मन टिकने लगे। अच्छी बात है। पर उससे पूरी बात नहीं बनेगी, जब तक अनुभूतियों के स्तर पर भीतर

तक सच्चाईयों का दर्शन स्वयं नहीं करने लगेगा; उसका विश्लेषण करते हुए अध्ययन नहीं करने लगेगा कि मन और शरीर की पारस्परिक प्रतिक्रिया क्या होती है? मन और शरीर नाम और नाम और रूप का एक दूसरे पर कैसा प्रभाव पड़ता है? जब हम यह नहीं समझते तो व्याकुल हो जाते हैं। हर समय प्रतिक्रिया करते रहते हैं इसलिये व्याकुल होते रहते हैं। हर प्रतिक्रिया हमारे भीतर विकार पैदा कर रही है इसलिये व्याकुल होते रहते हैं। प्रतिक्रिया करने का यह जो स्वभाव शिंकजा है वह और दृढ़ हो जाये रहा है, मजबूत हुए जा रहा है। हमारी गिरफ्त मजबूत हुए जा रही है। यह बंधन कैसे खुले? बंधन खोलने के लिए वहां तक पहुंचना होगा जहां गांठे बंधती हैं। इसलिए हर महापुरुष ने बताया जहां गांठे बंधती हैं वहां पहुंच।

भगवान महावीर ने बताया- संधि विदित्ता। विपश्यना करते हुए वहां पहुंचो यहां संधि हो रही है। जहां चित्तधरा पर राग की संधि हो रही है, जहां विचारधारा पर द्वेष की संधि हो रही है। उसको जानो। विदित्ता- उसको वेदनाओ से जानो, संवेदनाओ से जानो। उसको जान जाओगे तो मुक्त हो जाओगे, वीर बन जाओगे।

‘एस वीरे पसंसिये ये बद्धे पड़मोइए।’ - जिनको गांठ खोलनी आ गयी वे प्रशसां के लायक वीर हो गये और जो औरो की गांठ खोलने में सहायक हो गये, वे महावीर हो गये। वीर तो बने। इन गहराईयों में जाकर अपनी तो गांठे खोलना सीखे। गांठे खोलना आ गयी तो धीरे धीरे सारी गांठे खुलनी शुरू हो गयी।

शरीर और मन के सारे विकार संवेदना के रूप में ही शरीर पर प्रकट होते हैं। यह इनका स्वभाव है। मन और शरीर का परस्पर बड़ा गहरा संबंध है। इन संवेदना को सही रूप में देखते जायेगे तो देखेगे की धीरे धीरे सारा शरीर खुलता चला जायेगा। फिर देखेगे की थोड़ी सी दूर में कहीं भारी पन है। इसको भी देखेगे कि कितनी देर रहता है? देखते-देखते वह भी खुलने लगेगा। फिर एक अंगुष्ठ -प्रमाण ,बस अंगूठे के जितनी सी दूरी में कुछ ठोस लगेगा। ऐसा लगेगा कि यह नित्य है। और जब तिल भी टूट गया तो -

ठकुर मिल गये तिल ओले, साई मिल गये तिल ओले।

जिसने काम करना शुरू कर दिया उसे ठकुर मिल गये, उसे साई मिल गये, उसे ईश्वर मिल गया, उसे परम सत्य मिल गया। इस तिल के पीछे मिल गया। तिल टूटते ही मिल गया।

‘भिंदति हृदय-ग्रंथि, छिंदन्ति सर्व संशय;।’-यह हृदय-ग्रंथि टूटी कि सारे संशय दूर हो जायेगे। क्योंकि इसके परे की उस अवस्था का साक्षात्कार हो जायेगा जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है। इस अवस्था तक पहुंचा हुआ व्यक्ति औरो को क्या बतायेगा? उसका बोलना बंद हो जायेगा। उस अनुभूति के बारे में क्या बोलेगा जो इंद्रियातीत है, जो इंद्रियों के अनुभव के अधार पर जानी ही नहीं जा सकती।

‘बोले सो देखे नहीं, देखे बोल न पाय।’- जो बोलता है याने उस अवस्था का जो अनुभव बताता है तो समझ लेना चाहिए इस आदमी को अभी उसका अनुभव नहीं हुआ। जो दार्शनिक , आत्मा या परमात्मा की बातें करते हैं, समझना चाहिए उनको दर्शन नहीं हुआ।

सचमुच दर्शन होगा तो बोलना बंद कर देगा। बोल ही नहीं पायेगे।

‘गुणों केरी सर्करा, चाख चाख मुस्काय।’- गूंगे के मुंह की शक्कर है।केवल चखेगा, बोल नहीं पायेगा। उसका चेहरा बतायेगा कि इसने कुछ चखा है जो इसको अच्छा लगा। यही अवस्था उस साधक की भी होगी। जब हृदय-ग्रंथि टूटी और नित्य ,शाश्वत , धुव्र का साक्षात्कार हुआ तब उस स्थिति के बारे में कोई क्या कहे, कि मोक्ष कहे,कि निर्वाण कहे और किस विवरण के साथ कहे? जो कहता है वह सिर्फ दार्शनिक है, धार्मिक व्यक्ति नहीं है। धर्म और दर्शन में जमीन आसमान का अंतर है। दर्शन-शास्त्र का पंडित वास्तव में दर्शन नहीं करता, फिर भी अपने आप को दर्शनिक कहता है। उसे अनुभव थोड़ा भी नहीं हुआ है। सिर्फ इस मान्यता को या उस मान्यता को मानने वाला है । अनुभव नहीं है । और जिसको अनुभव हो जाएगा वह -

(ठाकुर मिल गया तिल ओले, मन मगन भया अब क्या बोले,
तुरत कलारी भई मतवाली, मधुआ पी गयी बिन तोले,
मधुआ पी गयी बिन तोले, मन मगन भवा अब क्या बोले,
साई मिल गया तिल ओले ।

क्या बोलेगा ? बोलना बंद हो जाएगा । मधुआ पी लिया, अमृत पी लिया । कोई कैसे कहेगा हमें क्या मिल गया राम मिल गया, कि परमेश्वर मिल गया कि निर्वाण मिल गया । उसके पा सकहने के लिए और कुछ नहीं तो यही कहता है

रूप नहीं रंग नहीं श्वेत नहीं श्याम जी । तुम सदा एक रस, राम जी राम जी ॥
न तो श्वेत है , न काला है, उसका न रूप है न रंग है । तुम सदा एक रस हो । वह अमृत सदा एक रस होता है । उसमें कुछ उत्पाद नहीं होता, उसमें कुछ व्यय नहीं होता । और क्योंकि उसमें कुछ उत्पन्न नहीं होता, इसी माने में अजन्मा है, अजर है अमर है ।उसका साक्षात्कार हो जाए तो किन शब्दों में समझाए ।

शब्दों में जंजाल में पड़े वे उलझ गए । जो अनुभूति के रास्ते पर चले उनका कल्याण हो चगा ।

इस धर्म गंगा के पास आए उसका कलकल निनाद सुना । बड़ा अच्छा लगा । पर अभी स्वयं डुबकी नहीं लगाई । डुबकी लगानी होगी । जब तक स्वयं डुबकी नहीं लगा लेंगे जब तक स्वयं अमृत नहीं चख लेंगे तब तक अमृत कैसा होता है नहीं जान पाएंगे । अमृत चखने में समय लगेगा । तो भी इस रास्ते पर जितने जितने कदम उठाएंगे उतने उतने अपने चित्त को निर्मल बनाने के कदम होंगे । और निर्मलता की हर अवस्था बड़ी शांतिदायक है बड़ी सुखदायक है । सही माने में सुख और शांति का अनुभव होना शुरू हो जाएगा ।

स्वयं काम करना पड़ेगा । किसी सिद्धार्थ गौतम ने काम किया तो केवल उसको लाभ हुआ वह बुद्ध बना । और कोई नहीं बन सका । किसी वर्धमान ने किया तो वह महावीर बना और कोई नहीं बन सका । हर व्यक्ति को स्वयं काम करना होगा । और काम करते करते वह उस अवस्था तक पहुंचना होगा । हर व्यक्ति को स्वयं डुबकी लगानी होगी । तब इस समुद्र

के भीतर की सीप हाथ आएगी । मोती हाथ आएगा मुक्ता हाथ आएगा । हमें डुबकी लगानी है हमें मोती प्राप्त करना है हमें अमृत प्राप्त करना है और इसके लिए सारी सच्चाईयां को भीतर कैसे देखें यह विद्या सीखनी है । जो जो सीखेगा वही आगे बढ़ पाएगा । अन्यथा रास्ता देखता रह जाएगा । एक कदम भी नहीं चल पाएगा और लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाएगा । एक कदम भी चल लेगा तो अपने लक्ष्य के एक कदम तो नजदीक हुआ दस कदम चल लेगा तो लक्ष्य के दस कदम नजदीक हुआ । इस तरह कदम कदम चलते अंतिम लक्ष्य तक पहुंच जाएगा । कदम कदम रास्ते पर स्वयं चलना है । मुक्त अवस्था तक पहुंचना है ।

5 धर्म जीवन में उतरे

धर्म गंगा के तट पर बैठ कर, इसका कल कल निनाद सुनने के बाद भी, उस पर से बहती हुई शीतल पवन का आनन्द लेने के बाद भी जब धर्म गंगा में डुबकी लगाएंगें तभी जानेंगे कि धर्म गंगा सचमुच कितनी कल्याणकारिणी है, कितनी पतित पावनी है, चित्त को निर्मल करने वाली है विकारों से मुक्त करने वाली है ।

हमने चर्चा की शुद्ध धर्म क्या है । इसे ठीक से समझें । धर्म को कहीं सम्प्रदाय न बना दें । जैसे ही हिन्दू धर्म हो जाता है, बौद्ध, जैन, मुस्लिम सिक्ख पारसी या ईसाई धर्म हो जाता है तो धर्म , धर्म नहीं रह जाता । वह हिन्दू बन जाता है बौद्ध, जैन, पारसी, सिक्ख बन जाता है । उसका अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है ।

धर्म का अपना एक अस्तित्व है जो महान है बड़ा कल्याणकारी है । उसके इस अस्तित्व को भूल नहीं जाए । धर्म कुदरत के कानून को कहते हैं । धर्म विश्व के विधान को कहते हैं । धर्म निसर्ग के नियम को कहते हैं । धर्म ऋत को कहते हैं । ऐसा ऐसा होगा तो यह परिणाम आएगा ही । हमें यह परिणाम नहीं चाहिए तो ऐसा ऐसा न होने दें । धर्म सर्वव्यापी, सार्वजनीन, सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता है । कुदरत का कानून हमेशा एक जैसा रहता है । हजारों वर्ष पूर्व भी यही कानून काम करता था आज भी यही कानून काम करता है । हजारों वर्ष बाद भी यही कानून काम करेगा ।

संसार में सब कुछ उत्पन्न होता है । नष्ट होता है । लेकिन कुदरत का कानून कायम रहता है । विपश्यना के पथ पर आने वाला व्यक्ति किसी एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में दीक्षित होने के लिए नहीं आता ।

हिन्दू अपने को जीवन भर हिन्दू कहता रहे

बौद्ध अपने आप को बौद्ध कहता रहे लेकि न धर्मवान बने धार्मिक बने धर्मनिष्ठ बने । जीवन में धर्म उतर जाए, व्यवहार में धर्म उतर जाए तो आदमी एक अच्छा आदमी बन जाएगा । जो अच्छा आदमी नहीं है वह अच्छा बौद्ध कैसे हो अच्छा ईसाई, जैन मुसलमान, सिक्ख याईसाई कैसे होगा ।

शील सदाचार का जीवन जीना

यह चर्चा भी हुई कि शील सदाचार का जीवन जीना है । हमें अपने शरीर वाणी से ऐसा कोई कर्म नहीं करना है जिससे अन्य प्राणियों की सुख शांति भंग होती हो अथवा जिससे अन्य

प्राणियों को पीड़ा पहुंचती हो । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसे समाज में रहना है परिवार में रहना है । यदि हम ऐसा काम करें जिससे लोगों की शांति भंग हो तो हम सारे वातावरण को अशांत बना देंगे बैचैन बना देंगे । सब के दुखियारा बना देंगे । लेकिन विपश्यी है तो बहुत जल्द समझने लगेगा कि हमें शरीर और वाणी से कोई ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए जिससे अन्य प्राणियों की सुख शांति भंग हो । ऐसा बुरा काम न करते हम किसी पर कोई अहसान नहीं करते बल्कि अपने पर ही अहसान करते हैं । क्योंकि जब भी हम अपने शरीर से कोई दुष्कर्म करते हैं हत्या करते हैं, चोरी करते हैं व्यभिचार करते हैं झूठ बोलते हैं कड़वी बात बोलते हैं परनिंदा की बात बोलते हैं या नशा करके अपने होश खो बैठते हैं तो दूसरों की हानि बाद में पहले अपनी हानि करते हैं क्योंकि अपने भीतर काम जगा लेते हैं । क्रोध जगाएं, द्वेष जगाएं वासना जगाएं लोभ जगाएं अहंकार जगाएं, जो भी विकार जगाएंगे हम तत्काल व्याकुल हो जाएंगे । इसके बाद वह विकार हमारी वाणी पर प्रकट होगा हमारे शरीर पर प्रकट होगा कर्मों पर प्रकट होगा तभी उससे दूसरों को हानि पहुंचाएंगे ।

अर्थात् अपनी ही हानि कर ली । उसके बाद दूसरों की हानि की । विपश्यना करने वाला व्यक्ति जो धर्म को तथा कुदरत के कानून को समझने लगता है वह इस बात को बड़ी जल्दी समझना शुरू कर देता है समझना शुरू कर देता है तो धर्म के रास्ते पर चलना शुरू कर देता है 'कुदरत का जो सार्वजनीन कानून है उस रास्ते पर चलना शुरू कर देता है । लोग जब शिविरों में आते हैं तो पहली बात यही समझायी जाती है कि वे किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होने नहीं आए हैं । शील सदाचार में दीक्षित होने आए हैं । अच्छा जीवन जीना है इस लक्ष्य में दीक्षित होने आए हैं ।

शिविर में आने वाले व्यक्ति को पांच व्रत लेने होते हैं । पांच शील लेने होते हैं पांच नियम का पालन करना होता है । और यही कि कम से कम दस दिन यहां रहते हुए तो हम अपने शरीर से या वाणी से कोईऐसा काम नहीं करेंगे जिससे अन्य प्राणियों की सुख शांति भंग होती हो । यानी हत्या नहीं करेंगे चोरी नहीं करेंगे झूठ नहीं बोलेंगे व्यभिचाचर नहीं करेंगे । यहां रहते हुए दस दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे । किसी मादक पदार्थ का सेवन नहीं करेंगे ।

जो भी साधक आता है उसे दस दिनोंतक इन पांचों व्रतों का पालन करना होता है ।

मन को निर्मल करना

इसके बाद यह समझाया जाता है कि एक व्यक्ति सदाचार का जीवन जीना तो चाहता है पर कैसे जिए ? उसके मन ही वश में नहीं । तो धर्म का अगला कदम होता है मन को वश में कैसे किया जाए । मन को वश में करने के बहुत से तरीके होते हैं । वश में करने सेमन बलवान हो जाता है । बड़ा एकाग्र किया हुआ मन हमारा कल्याण कर सकता है पर हमारी

हानि भी कर सकता है । अगर विकारों से भरा मन एकाग्र हो गया तो आधार मैला होगा । मन विकारों से भरा होगा तो अपनी भी हानि करेगा और दूसरों की भी हानि करेगा । अतः चित्त को मात्र एकाग्र कर लेना धर्म का लक्ष्य नहीं है । यह साध्य नहीं है, केवल साधन है । और साधन भी ऐसा होना चाहिए जो आगे चलकर हमें साध्य से मिला दे ।

किसी बिल्ली को देखा होगा । चूहे के बिल के पास खड़ी है । उसका एक रोम तकम नहीं हिलता । बिल्कुल एकाग्र है कि चूहा निकले और उसे हड़प कर ले । किसी शिकारी को देखा होगा जो अपनी दोनाली बंदूक का निशाना लगाये बैठा है । ध्यान लगाए बैठा है कि सामने कोई शिकार आए और धांय से मार दे । इस प्रकार की एकाग्रता हमारे काम की नहीं । एकाग्रता के साथ मन की निर्मलता भी आनी चाहिए तो हमसे कोई बुरा काम नहीं होगा । जो बलवान बने जा रहा है वह निर्मल भी होता चला जाएगा । और निर्मल मन जब बलवान बनता है तो हमारा भी कुशल करता औरों का भी कुशल करता है । अपना भी मंगल करता और का भी मंगल करता है ।

इसीलिए मन को एकाग्र करने के लिए हमने सांस का सहारा लिया । सांस के सहारे बढ़ते बढ़ते एक ओर चित्त को एकाग्र किए जा रहें हैं और दूसरी ओर चित्त निर्मल हुए जा रहा है । , पहला कदम शील सदाचार का, दूसरा कदम समाधिका मन को वश में करने के का और दूसरा कदम समाधिका और तीसरा कदम प्रज्ञा का । प्रज्ञा में स्थित हो जाएं, स्थितप्रज्ञ हों जायं तो हर क्षण, हर कदम प्रज्ञावान रहें । प्रज्ञा क्या है कुदरत के कानून को , विश्व के विधान को ऋत को हमारे यहां ऋतम्भरा प्रज्ञा कहा गया । ऋतम्भरा प्रज्ञा तब होती है जब हमारा मानस उस ऋत की जानकारी स भर जाए । ऐसी प्रज्ञा जो हमें अनुभूतियों द्वारा सिखाए कि ऋत क्या होता है, कुदरत का कानून क्या होता है , निसर्ग का नियम क्या होता है ? उसके अनुसार अपने जीवन को ढालना शुरू कर दें तो चित्त निर्मल होता चला जाएगा । विकारों से विमुक्त होता चला जाएगा । विकारों से मुक्त होते होते नितांत मुक्त अवस्था तक पहुंच जाएगा ।

शील समाधि और प्रज्ञा इस पर किसी का एकाधिकार नहीं है । यह सार्वजनीन मार्ग है । इस पर बौद्धों का एकाधिकार नहीं, हिन्दुओं या जैनियों का एकाधिकार नहीं । धर्म है जो सब का है । हम यदि सदाचार का जीवन जीते हैं तो चाहे अपने को हिन्दू या मुसलमान कहें, जैन या बौद्ध या ईसाई कहें, भारतीय या अमरीकन कहें कोई अंतर नहीं पड़ता । हम अच्छा जीवन जीने लगे । हम अपने मन को वश में करने का काम करने लगे और वह भी ऐसे साधन से करने लगे जो सार्वजनीन है । यदि किसी देवी का , देवता का ईश्वर का ब्रह्म का, अल्लाह का अथवा किसी महापुरुष या संत का नाम लेकर या उसके रूप का ध्यान करके मन एकाग्र करते ततो सार्वजनीन नहीं होता । किसी एक सम्प्रदाय विशेष का हो जाता । हमने तो केवल श्वास के सहारे अपने मन को एकाग्र करने का काम शुरू किया । और श्वास सार्वजनीन है । सब का है एक जैसा है । किसी संप्रदाय से बंधा हुआ नहीं है । फिर जब प्रज्ञा में उतरे तो अपने मन में जागे हुए विकारों की वजह से अपने शरीर पर क्या होने लगा,

यह जानने का काम करने लगे । यह मन और शरीर की आपसी प्रतिक्रिया कैसे चल रही है ? यह भीतर ही भीतर कौन सी धाराएं तरंगें चल रही हैं और क्या उथल पुथल हो रहा है ?

यह सारा कुछ देखने लगे तो सारी बात समझ में आने लगी कि मैं जब जब किसी विकार को पैदा करके अपने मन में प्रतिक्रिया करता हूं राग पैदा करके प्रतिक्रिया करता हूं या द्वेष पैदा करके या भय, हंकार अथवा वासना पैदा करके प्रतिक्रिया करता हूं तो व्याकुल हो जाता हूं । यह कुदरत का कानून है । व्याकुल हो ही जाता हूं । और जब जब उन्हीं विकारों को दूर कर लेता हूं ता भीतर बड़ी सुख शांति मालूम देती है ।

साधक क्या देखता है अपने भीतर ? चित्त को सांस के सहारे एकाग्र करके क्या देखने लगा ? देखता है चित्त और शरीर का परस्पर क्या संबंध है ? शरीर और चित्त कैसे एक दूसरे से प्रभावित हुए जा रहे हैं ? शरीर और चित्त गलत तरीके से प्रभावित होकर कैसे हमें व्याकुल बनाए जा रहे हैं । और यदि हम गलत प्रकार से प्रभावित होना बंद कर दें तो हमारी व्याकुलता समाप्त हो जाय । सारी बात समझ में आने लगती है क्योंकि भीतर जो प्रपंच चल रहा है उस सारे प्रपंच को हम एकदृष्टाभाव से देखते हैं तटस्थ भाव से देखते हैं एक वैज्ञानिक की तरह उसका अनुसंधान करते हैं । मेरे बारे में क्या सच्चाई जिसको मैं मैं किए जा रहा हूं, जिसको मेरा मेरा किए जा रहा हूं आखिर यह क्या है ? यह सारा शीर स्कंध सह सारा चित्त स्कंध क्या है ? और इन दोनों के परे की जो अवस्था है

वह भी क्या है ? पुस्तकें पढ़ी हैं, प्रवचन सुने हैं बड़ा चित्तन मनन किया है इसलिए मान रहे हैं कि यह शरीर अनित्य है, क्षण भंगुर है नश्वर है । यह चित्त भी अनित्य है, नश्वर है, क्षण भंगुर है और इनसे परे कुछ और है जो नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है एक रस है । केवल मान रहे हैं । जाना तो नहीं । अनुभवत तो नहीं हुआ । और अनुभव नहीं हुआ तो कुछ नहीं जाना । सारा जीवन केवल माननके के धोखे में बीत गया ।

विपश्यना अनुभवन करना सिखाएगी । अपने भीतर सच्चाई का अन्वेषण होना शुरू हो जाएगा । विश्लेषणात्मक अध्ययन होना शुरू हो जाएगा । जो देखते देखते अपने शरीर के बारे में सारी सच्चाई प्रकट हाने लगेगी । कैसे नन्हें नन्हें परमाणुओं से यह शरीर नबा है । यह केवल एक सुनी हुई बात नहीं रहेगी बल्कि अपने अनुभव पर उतरने लगेगी । शरीर नन्हें नन्हें परमाणुओं से बना है आरे हर मरमाणु में केवल तरं ही तरंग तरंग ही तरंग है । सिर से पांच तक एक प्रवाह चलता है और बाहर भतर सर्वत्र तरंग तरंग महसूस होती है । फिर अपने चित्ता को दे खत है और चित्त पर जो चित्तवृत्तियां आती हैं , उनको देखता वे भी तरंग ही तरंग है । आरंभ में सच्चाई बड़ी घनीभूत लगती है, पर देखते देखते सारा घनत्व नष्ट होने लगता है, ठोसपना पिघलने लगता है । साधक की ऐसी अवस्था आती है जिसको कहते हैं इसे भंग ज्ञान हो गया । माने सब कुछ भंग हो गया । यह कितनी बड़ी माया थी कि सब कुछ ठोस लगता था सारा शरीर कितना ठोस लगता था । मन का भावेश कितना ठोस लगता था । मन में वासना जागती हो कितनी घनीभूत हो कर आती है क्रोध जागता है तो कितना

घनी भूत हो कर आता है कोई भी विकार जागता है, कितना घनीभूत हो कर आता है देखते देखते उसके टुकड़े होने लगे केवल तरंगे ही तरंगे तरंगे ही तरंगे रह गयीं ।

तब सारा प्रपंच और अच्छी तरह समझ में अपने लता है समझने लगता हूं कि मैं क्यों व्याकुल हो जाता हूं जब तक अपने भीरत सच्चाई नहीं देखता तब तक ऐसा मानते रहता हूं कि मैं व्याकुल इसलिए हुआ कि बाहर ऐसी घटना घट गयी जो मुझे अच्छी नहीं लगी बाहर कोई अनचाही बात हो यगी इसलिए मैं व्याकुल हो गया या कोई मनचाही बात नहीं हो सकी इसलिए व्याकुल हों गया । अंदर देखने लगेगा तो जानेगा कि बाहर की बातों से कोई लेने देन नहीं है । बाहर तो केवल एक घटना घटी । बाहर से तो कान में एक शब्द आया, आंख से एकरूप दिख गया , नाक में कोई गंध आ गयी जीभ पर कोई रस आ गया, शरीर पर कोई पदार्थि स्पर्श कर गया या मन में कोई चिंतन आयगया । शरीर पर कोई पदार्थ स्पर्श कर गया या मन में कोई चिंतन आ गया । लेकिन उसकी वजह से भीतर क्या होने लगा ? मानस के चारो खंडसाफ साफ समझ में आने लगेंगे । हमारी चेतना के चार खंड खूब समझ में अपने लगेंगे ।

मानस के चार खंड हैं जिन्हें अलग अलग परंपरा ने अलग अलग नाम दिए हैं । इन्हें किसी परंपरा ने मन , बुद्धि, चित्ता, अहंकार । किसी परंपरा ने कहा विज्ञान, संज्ञा , वेदना, संस्कार । नाम चाहे जो हों , नामों में क्या रखा है । एक वैज्ञानिक सिर्फ सच्चाई को देखता है नाम के पीछे नहीं पड़ता । मानस का पहला खंड चेतना का पहला खंड जिसे विज्ञान कहते हैं वह जानने का काम करता है । कान में कोई शब्द आया जो जान लिया कोई शब्द आया । आंख के सामने को रूप आया ता जाना रूप आया । नाम में कोई गंध आयी तो जाना गंध आयी । जीभ पर कोई रस आया तो जाना रस आया । शरीर पर कोई स्पर्श हुआ तो जाना स्पर्श हुआ । मन में कोई चिंतन चला तो जना चितन आया । विज्ञान का काम सिर्फ जानना है कोई घटना घटी

इन छहों द्वारों में सके किसी द्वारा पर कोई घटना घटी । इतने में मानस का दूसरा खंड जिसे संज्ञा कहेंवह पहचानने का काम करता है । झट से पहचानता है कैसा शब्द है कैसा रूप है कैसी गंध है कैसा रस है कैसा स्पर्श है कैसा चित्तन है । और फिर वह मूल्यांकन भी करता है कि अच्छा है या बुरा है । इस मूल्यांकन के फलस्वरूप हमारे भीतर एक तरंग चलने लगती है । संज्ञा ने कह दिया अच्छा है तो बड़ी सुखद तरंग चली उसने कह दिया कि बुरा है तो बड़ी दुखद तरंग चली । यह काम मानस के तीसरे हिस्से ने यिका यानी वह संवेदनशील हुआ सुखद तरंग चली तो सुखद संवेदना महसूस हुई दुखद तरंग चली तो दुखद संवेदना महसूस हुई । यह तीसरेखंड का काम हुआ । अब चौथे ने अपना सिर उठाया । वह प्रतिक्रिया करने लगा । सुखद संवेदना हुई तो चाहिए चाहिए ऐसा राग पैदा करने लगा । दुखद संवेदा हुई तो नहीं चाहिए नहीं चाहिए । ऐसा द्वेष पैदा करने लगा । यह सारा प्रपंच अनुभूति पर उतरने लगा । और सच्चाई जब अनुभूति पर उतरने लगती है तो महापुरुषों की पुस्तकों की दार्शनिकों की यासंतों के अनुभव की जो बातें हैं उन्हें हम अच्छी तरह समझने लगते हैं ।

मेरा जन्म और पालन पोषण एक बहुत कट्टर हिन्दू सनातनी घर में हुआ । जैसे सब करते हैं वैसे ही मैं भी बचपन से गीता का पाठ करता था । खूब पाठ करता था क्योंकि किसी ने कह दिया था एक अध्याय का पाठ कर लेगा तो एक जीवन का पाप कट जाएगा दो अध्याय का पाठ कर लेगा तो दो जीवन के पाप कट जाएंगे अके और अठारह अध्याय का पाठ कर लेगा तो कहना ही क्या ।

यह बात बड़ी अच्छी लगने लगी । सस्ता सौदा है, अच्छा लगेगा ही । खूब पाठ करें । पर समझें नहीं कि क्या पाठ कर रहे हैं । ? कभी समझ भी गए तो उलटा ही समझे पूरी तरह अर्थ समझ में नहीं आया । गीता में एकश्लोक है

उत्कामन्त स्थितं वापि, भुंजानं वा गुणान्वितम् ।

विमूढा नानूपश्यन्ति, पश्यान्ति ज्ञानचक्षुः ॥

विमूढ लोग विपश्यना नहीं कर सकते । विपश्यना वे ही कर सकते हैं जिनके ज्ञानचक्षु खुल गए । पर बात ही समझते थे । तब तो यही समझते थे कि हमारे भी ज्ञानचक्षु खुल जाएंगे । हम आंख बंद करके बैठेंगे और भीतर की आंख खुलेगी तो भीतर न जाने क्या क्या देखना शुरू कर देंगे । ज्ञानचक्षु क्या हो है ? अनुभव से जो ज्ञान प्राप्त हो उसे ज्ञानचक्षु कहते हैं प्रज्ञाचक्षु हते थे । जब आदमी धर्म में हिंदू धर्म देखना शुरू कर देता है बौद्ध धर्म देखना शुरू कर देता है जैन , सिक्ख , ईसाई धर्म देखना शुरू कर देता है तो ज्ञानचक्षु नहीं खुलते । लेकिन जब साधक सच्चाई देखना शुरू कर देता है तो सारी बात समझ में आने लगती है । वह देखेगा कि कान के नाक के जीभ के किसी दरवाजे पर खटपट शुरू हुई तो मानस के एक खंड ने सिर उठाया । उत्कामन्तं- चेतना का एक खंड उठ खड़ा हुआ और खड़ा होकर कहता है कुछ हुआ । किसी नकिसी इंद्रिय के दरवाजे पर कोई घटना घटी । फिर स्थितं - मानस का दूसरा हिस्सा रुकता है और पहचानने की कोशिश करता है कि क्या हुआ क्या घटना घटी ? शब्द आया तो क्या शब्द आया गाली या प्रशंसा है ? रूप देख तो कैसा रूप देख नारी का या पुरुष का सुंदर या असुंदर काला या गोरा ? फिर मूल्यांकन करता है यह तो बहुत अच्छा है यह बहुत बुरा है । मानस का यह हिस्सा रुक करके स्थित हो करके यही काम करता है मूल्यांकन करने का काम करता है । अब जैसे ही मूल्यांकन हुआ सारे शरीर में एक प्रवाह चलने लगा । मूल्यांकन ऐसा हुआ कि बहुत बुरा तो दुःखद प्रवाह चलने लगा । मूल्यांकन ऐसरा हुआ कि बहुत अच्छा तो सुखद प्रवाह चलने लगा ।

जैसे ही यह प्रवाह चलने लगा ते भुंजाने - लगा भोगने दुःखद प्रवाह चला तो तो उसका दुःख भोगने लगा सुखद प्रवाह चला तो उसका सुख भोगने लगा । भोगने लगा तो गुणान्वितम बंधने लगा । भोक्ताभाव से किया हुआ प्रत्येक काम भतर ही भीतर गांठें बांधता है । हमारे लिए बंधन पैदा करता है । अब इसी को देखना शुरू कर दें तो बहुत बड़ा कल्याण हो जाता है । भीतर देखें तो सारा प्रपंच समझ में आ जाता है कि मैं क्यों दुखी हो जाता हूं और कैसे इस दुःख के बाहर निकल सकता हूं । ये सारी बातें स्वयं विपश्यना किए बिना कोई कैसे समझेगा ? सारे जन्म पाठ करता रहेगा समझेगा ही नहीं ।

जिस किसी महापुरुष ने कोई बात कही अपने अनुभव से ही कही पर उस बात को हम अपने अनुभव पर नहीं उतारें तो कैसे समझेंगे ? बिल्कुल नहीं समझ सकेंगे । जब अनुभूति पर उतारने लगे तब सारा प्रपंच समझ में आने लगा । समझ में आने लगा कि निसर्ग की इस सच्चाई का हिन्दू से लेने देन नहीं जैन या बुद्ध से कोई लेना देना नहीं । यह तो सार्वजनीन बात है कुदरत के कानून की बात है । जैसे ही हम इन संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करें चाहे राग की करें या द्वेष की करें तुरंत व्याकुल हो जाएंगे । अपने मन की समता खो देंगे । प्रतिक्रिया नहीं करेंगे तो हम व्याकुल नहीं होंगे । समझ में आएगा कि बाहर के किसी विषय तक हम व्याकुल नहीं हो रहे हैं । किसी ने गाली दी इसलिए व्याकुल नहीं हो रहे । गाली हमारे कान में वे शब्द आए एक तरंग चली हमारे मानस के एक हिस्से ने कहा यह गाली है और कहा बहुत बुरी है तो यही तरंग बड़ी दुख द बन गयी । दुःख द बन गयी जिसके बाद हमने द्वेष पैदा किया । भतर ही भंतर इतनी घटनाएं घट गयीं । इन घटनाओं को हमने देखा ही नहीं कि हमारे भीतर क्या प्रपंच चला । बस यही देखा कि बाहर किसी ने गाली दी आर हतेम गुस्सा आया । हमारे लिए तो वह गाली प्रमुख हो गयी उसने गाली दी उसने मेरा अपमान किया । यही बात बार बार मन में आने लगी । अपने भीतर क्या हुआ यह नहीं देख जाए । बाहर किसी ने क्या किया बाहर क्या हुआ यही चिंतन चलने लगा और उसकी वजह से हमारे भीतर विकार पर विकार जागने लगे क्योंकि वैसही संवेदना जागने लगी । इन संवेदनाओं को नहीं देखेंगे तो इस स्वभाव के बार कैसे निकलेगे ? इस पूर्ण सच्चाई को देख नहीं पाए । एक आंशिक सत्य ही देखा । बाहर घटना घटी यह सच्चाई को केवल एक हिस्सा है । पूर्ण सत्य नहीं है । आंशिक सत्य बड़ा भ्रमक होता है पूर्ण सत्य के नजदीक आएंगे तो सारे भ्रम दूर हो जाएंगे फिर देखेंगे कि कोई भ्रम भ्रान्ति नहीं रही । सारी भ्रान्तियां दूर हो जाएगी ।

बाहर घटना घटी यह एक सत्य है उसको नकारते नहीं । लेकिन उससे बड़ा सत्य हमारे भीतर भी है । भीतर क्या होने लगा यह विपश्यना से देखना आएगा । इसी का ज्ञानचक्षु कहा इसी को प्रज्ञाचक्षु कहा । भतर ही भीतर मानस के ये चार खंड किस प्रकार काम करने लगे जानेने वाले ने जाना पहचानने वाले ने पहचाना मूल्यांकन किया । संवेदनशील होने वाला संवेदनशील हुआ और प्रतिक्रिया करने वाले ने प्रतिक्रिया कर दी । यह सारा का सारा प्रपंच हमें कितना व्याकुल बनाता है यह कभी समझे ही नहीं । अनुभूति द्वारा समझ में आने लगेगा तो इससे बाहर कितना आसान हो जाएगा । अपने मानस का स्वभाव ऐसा है कि जब देखो जबि प्रतिक्रिया करता है । अच्छा लगता है राग की प्रतिक्रिया करता है बुरा लगता है द्वेष की प्रतिक्रिया करता है । अंतर्मन की गहराइयों में प्रतिक्रिया ही किए जा रहा है । अब उसका स्वभाव पलटना आसान हो जाता है क्योंकि हम उसको देखने लगे । अब चोर आएगा ही नहीं । हमारे घर में प्रवेश ही नहीं करेगा । अगर आ भी गया तो ढहरेगा नहीं भाग जाएगा क्योंकि हम जाग रहे हैं । घर कामालिक जाग रहा है । भीतर की जागृति बनी रहेगी तो यह सारा रहस्य और गहराइयों से समझ में आने लगेगा ।

आस्रव विहीन कैसे बनें ।

हमारे यहां महापुरुषों ने एक शब्द का प्रयोग किया । आस्रव । स्रव कहते हैं बहाव को । कुछ बहता है तो उसको स्रव कहते हैं । जैसे नासूर में से पीप बहती है तो बहाव बहे जा रहा है । नासूर कहते हैं उस आस्रव को । आस्रव का एक अर्थ यही होता है कि उससे नशा आता है । जैसे अंगूर का आस्रव निकालें तो मदिरा तैयार हुई उसे लेते हैं तो नशा आता है । द्राक्षास्रव यानी द्राक्ष (अंगूर) से बना हुआ आस्रव । उसे लेते नशा आएगा । इस प्रकार आस्रव के दो अर्थ हुए । एक अर्थ हुआ बहाव और दूसरा हुआ नशा । बाहर घटना घटी और हमें होश नहीं है तो गुस्सा आ गया । गुस्सा आया यानी क्रोध जगाया । क्रोध जगाते ही भीतर क्या होने लगा ? एक जीवन रासायनिक प्रतिक्रिया होने लगी । एक विशेष प्रकार का रसायन तैयार होकर हमारी धमनियों में जो रक्त बहता है उसके साथ बहने लगा यानी रक्त के साथ एक आस्रव बहने लगा । ऐसा रसायन बहने लगा जो हमें बड़ा वैचैन बनाएगा । मन और शरीर एक दूसरे को इतने प्रभावित रहते हैं कि जैसे ही मन में क्रोधजागा वैसा ही एक प्रकार का जीव रसायन पैदा हुआ और खून के साथ बहने लगा और तुरंत बेचैनी जागने लगी क्योंकि वह रसायन इसी प्रकार का है । वह आस्रव इसी प्रकार का है । इसके बहाव से हम बहुत बेचैन हो गए । बेचैन हो गए तो और गुस्सा आया । गुस्सा आया तो बहाव और तेजी से बहा । बहाव और तेजी से बहा तो और गुस्सा आया । गुस्सा आया आस्रव बहा आस्रव बहा गुस्सा आया यह दुष्चक्र बढ़ता ही गया । घंटों गुस्से में सुलगते रहे क्योंकि हर गुस्सा भीतर एक ऐसा रासायनिक बहाव पैदा करता है आस्रव पैदा करता है जिस आस्रव की वजह से हम और क्रोधित होते हैं । और क्रोधित होते हैं तो और आस्रव पैदा होता है इसका अंत कहां होगा ? महापुरुष ने रास्ता बताया इसे देखो जैसा है वैसा देखो । देखने लग जाओगे तो इसके बाहर निलना शुरू हो जाएगा ।

इसी प्रकार से वासना जगी तो एक तरहका रसायन बहना शुरू हुआ । उस रसायन की वजह से वासना और तेज हुई । वासना तेज हुई तो रसायन और तेज हुआ । दुष्चक्र फिर चल पड़ा । इसी प्रकार भय जागा तो भय की संवेदना के साथ एक तरहका आस्रव बहने लगा । भय और बढ़ा तो आस्रव और बढ़ा बढ़ता गया बढ़ता गया और हम घंटों व्याकुल रहें । हम विकार पर विकार जगाते ही चले जाते हैं तो किसकी हानि करते हैं ? अपनी ही हानि करते हैं ।

महापुरुष इस बात को देख लेते हैं तो रास्ता बताते हैं कि जब जब अंदर ऐसी जीव रासायनिक प्रक्रिया होनी शुरू हो जाए तो उसको देखना शुरू करें । मानस का वह चौथा हिस्सा जो प्रतिक्रिया कर रहा था , वह इससे कमजोर पड़ना शुरू हो जाएगा । और मानस का पहला हिस्सा जो केवल देखने का काम करता है वह बलवान बनना शुरू हो जाएगा । हमने अपनी हालत यह बना ली है कि दृष्ट्यभाव से देखने वाला पहला हिस्सा बिल्कुल दुर्बल हो गया है और जो प्रतिक्रिया करनेवाला भोक्ताभावा वाला जो चौथा हिस्सा है वह बड़ा बलवान हो गया है । जब देखो तब प्रतिक्रिया करता है भय की करता है कभी क्रोध की करता है

कभी ईर्ष्या की करता है कभी वासना की करता है कभी अहंकार की करता है । हमें व्याकुल ही बनाता जाता है और हम पागल हो जाते हैं नशाचढ़ जाता है । गोधी पर क्रोध का नशा चढ़ जाता है । वासना वाले पर वासना का नशा चढ़ जाता है ईर्ष्यालू पर ईर्ष्या का नशा चढ़ जाता है । अपनी संवेदनाओं को देखना शुरू कर दें तो नशा उतरना शुरू हो जाता है ।

बहुत लोग जो नशों में बहुत व्याकुल हैं शराबी हैं या जिन्हें नशीले पदार्थों का व्यसन है ऐसे लोगे विपश्यना में आते हैं । एक शिविर में या दो शिविर में या तीन शिविर में नशे से छुटकारा पा लेते हैं । शिविरों में उनको कोई धमकी नहीं देता कि घर जाकर शराब पिओगे कि घर जाकर शराब पिओगे तो कुम्भीपाक नरक मिलेगा । यही सिखाया जाता है कि देखते जाओ कि भीतर क्या हो रहा है । देखते देखते बात समझ में आने लगती है कि नशा शराब का नहीं है । ऊपर ऊपर से ऐसा लगता है कि मुझको शराब से लगाव हो जायगा । वस्तुतः शराब से लगाव नहीं हुआ ।

जब जब शराब पीता है तो भीतर एक संवेदना चलती है । शराब से एक संवेदना चली उस संवेदना से आसक्ति हो गयी । बार बार वह संवेदना चाहिए । बार बार वैसी अनुभूति चाहिए । याद करता है वैसी संवेदना चाहिए । तो मचलता है जरा सी फिर पी लूं । भीतर का मन कहता है और चाहिए । वस्तुतः उसे शराब नहीं वह संवेदना और चाहिए । नशीले पदार्थ की लत वाले व्यक्ति को वह नशीला पदार्थ नहीं उसकी वजह से जो संवेदना आती है वह और चाहिए ।

यही हाल हर आदमी का है । काम वासनाओं से व्याकुल रहने वाले व्यक्ति में किसी अन्य व्यक्ति के प्रति काम वासना नहीं जाग रही है । वह तो केवल एक बाहरी आलंबन मात्र है । भीतर हर काम वासना एक प्रकार की संवेदना पैदाप करती है । उस संवेदना के प्रति आसक्ति हो गया । अब उसको बार बार किसी न किसी बहाने से काम वासना जगानी है । इसी प्रकार उसे हर किसी बहाने से क्रोध जगाना है हर किसी बहाने से भय जगाना है ।

महापुरुषों ने यह सच्चाई देखली । इसमें हिन्दू पने की क्या बात है ? इसमें जैनपने की क्या बात है या मुस्लिमपने की क्या बात है । यह तो कुदरत का कानून है । प्रत्येक व्यक्ति जो अपने भीतर इस प्रकार के जीव रासायनिक पदार्थ का सृजन करेगा वह व्याकुल होता चला जाएगा नशीला होता चला जाएगा । जब विपश्यना करने लगेगा तो उसका वह नशा उतरता चला जाएगा । उसका वह आस्रव कम होता चला जाएगा । अब शरीर में रासायनिक क्रिया इतनी नहीं होती जितनी पहले होती थी । ऐसा होते होते धीणास्रव आस्रव विहीन हो जाएगा । जब अनास्रव हो गया आस्रव नहीं रहा तो मुक्त हो जाएगा । उसी को भारत की भाषा में मुक्त कहते थे जीवन्मुक्त हो गया । इसी जीवन में मुक्त हो गया । उसने आस्रव जो समाप्त कर लिए ।

एक आदमी केवल आस्रवों का पाठ करता है खीझास्रवों का पाठ करता है, अनास्रवों का पाठ करता है । ऐसा केवल पाठ करने वाला व्यक्ति केवल कर्मकांडों मते पड़ा हुआ व्यक्ति धर्म नहीं समझ पाएगा । वह हिन्दू धर्म में उलझा रहेगा ,जैन धर्म में उलझा रहेगा, बौद्ध धर्म

में मुस्लिम धर्म में ईसाई धर्म में उलझा रहेगा । उसका धर्म समझ में नहीं आएगा । उसको कुदरत का कानून समझ में नहीं आएगा । भगवान बुद्ध कहते हैं जो स्रप्रदायवादी हैं विपश्यना उनकी विषय भूमि नहीं उनकी गोचरीभूमि नहीं । अपने भीतर धर्म का दर्शन करना अपने भीतर सच्चाई का दर्शन करना विपश्यना करना है किसी स्रप्रदायवादी का काम नहीं । वह कर ही नहीं पाएगा । जब बैठेगा यही विचार करेगा हमारी दार्शनिक मान्यता है तो यह उसका क्या हुआ ? उसका भी थोड़ा सा ध्यान करें । सच्चाई को तो छोड़ देगा अपनी मान्यताओं का ध्यान करेगा । बार बार मन ही मन वे मान्यताएं ही दोहराएगा । वह कहां देख पाएगा कि मन और शरीर की परस्पर प्रतिक्रिया क्या है ? इस नाम और रूप की परस्पर प्रतिक्रिया क्या है । ?इन प्रतिक्रियाओं के कारण कैसे विकार जागते हैं ? कैसे उनका संवर्धन होता है ? कैसे इस संवर्धन को रोका जा सकता है और कैसे इनसे नितांत विमुक्त हुआ जा सकता है ?

मेरा मालिक मैं स्वयं

पुरानी भाषा में शरीर को रूप कहते थे । रूप्पती रूपं याने प्रति क्षण जो परमाणु उत्पन्न होते हैं नष्ट होते हैं उसे रूप कहते थे । उस रूप के सहारे जो चित्त धारा चलती है उसका नाम कहते थे । यानी जो इस शरीर के सहारे सहारे चलता है उसका नाम कहा गया । जो सच्चाई को जान गया वह चित्त सच्चनाम सत्यनाम कहलाने लगा । अर्थात् इस व्यक्ति की चित्तधारा अब सच्चाई के साथ चलने लगी माने कुदरत के साथ चलनेलगी धर्म के अनुसार चलने लगी । ऐसा व्यक्ति सच्चनाम कहलाया । जो सच्चानाम हो जाएगा वह निर्भय हो जाएगा । ऐसा व्यक्ति निर्भय हो जाएगा । जब वह किससे बैर करेगा ? बैर करेगा तोभी तो क्रोध जागेगा दूसरे को भयभीत करेगा । अब वह न स्वयं भयभीत होगा न किसी दूसरे भयभीत करेगा क्योंकि सच्चानामहो गया । सच्चनाम होना बड़े कल्याण की बात होती है । केवल पाठ करके रह गया तो कोरे पाठ से कुछ नहीं मिलेगा । और जिस दिन सच्चाई को भीतर देखना शुरू किया सब मिल जाएगा क्योंकि सच्चनाम हो गया । सचमुच निर्भय हो गया सचमुच निर्भय हो गया । जान गया मेरा मालिक मैं हूं अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति मैं अपने भीतर की मिल्कीयत खो बैठा इसलिए विकार पर विकार पैदा करके मैंने अपनी दुर्गति कर ली अपना भविष्य खराब कर लिया । भीतर की मिल्कीयत हासिल कर ली तो अपनी गति को सुगति बना लिया और सारी गतियों के परे मुक्तावस्था तक पहुंच गया । अपीन गति का मालिक स्वयं मैं हर व्यक्ति स्वयंभू स्वयं अपने आप को बनाता है । चाहे अपने अप को अच्छा बनाए या बुरा । होश रहता है तो अपने आप को अच्छा बनाता है होश न ही रहता तो अपने को बुरा बनाता है ।

ये सारी बातें कवल पाठ करने से कैसे समझ में आएगी । काम करने से सारी बातें समझ में आने लगेगी । जो लोग अपने आप को ईसाई कहते हैं तो कहते हैं अब बाइबल

की बात खूब समझ में आने लगी शिविरों में मुसलमान आते हैं तो कहते हैं कुरान की बात अब खूब समझ में आने लगी । हिन्दू आते हैं तो कहते हैं अब गीता की वेदांत की बात ठीक से समझ में आतने लगी । बौद्ध आते हैं कहते हैं त्रिपिटिक की बात समझ में आने लगी जिस किसी सदगुरु ने जो बात कही अपने अनुभव से कही और हमने अनुभव तो किया नहीं एक संप्रदाय खड़ा कर लिया । हमने तो बस धर्म की ध्वजा उठा ली । हमारे यंहा महापुरुषों कि एक एव चरे धम्म धर्म तो प्रत्येक आदमी अकेला पालन करता है इसमें समूह क्या करेगा ? इसमें भीड़ क्या करेगी । न धम्मद्धजका भवे । धर्म कोई ध्वजा न बन जाए । भीड़ इकट्ठी कर ली और फिर हम सब हिंदू है कह कर एक झंडा खड़ा कर लिया । या हम सब मुसलमान है कह कर एक झंडा खड़ा कर लिया । यह धर्म कैसे हुआ ? हमने जो दस हजार आदमी इकट्ठे किए क्या वे सारे धर्मवान है ? उनमें से कोई धर्मवान भी हो सकता है कोई नहीं भी । अपने को हिन्दू या मुसलमान कहने मात्र से धार्मिक केस हो गया । अपने को बौद्ध या जैन या ईसाई कहने मात्र से धार्मिक कैसे हो गया । धर्मवान तो एक एक आदमी को स्वयं अलग अलग होना होगा । कोई ज्यादा धार्मिक होगा कोई कम होगा । एक ही आदमी जो सवरे धर्मवान था उसेस शाम को कोई गलती हो गयी और वह अधर्मी हो गया । फिर अपने को सुधारने लगा , तो फिर धर्मवान हो गया । प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर धर्म धारण करता है । यह समूह का काम नहीं है यह बात संतों ने अपने अनुभव से कही है । ज्ञानियों ने अपने अनुभव से कही है । यह सारा कानून अपने भीतर देखने लगेगे तो धर्म क्या है खूब समझ में आने लगेगा । अपना कल्याण होना शुरू हो जाएसगा ।

कल्याण तब होगा जब कि स्वयं अनुभव करके देखेंगे । कोरी बातों से कल्याण नहीं हुआ करता । केवल उपदेश सुनकर कोई आदमी धर्मवान नहीं बनता, बन ही नहीं सकता । केवल धमकियां से कोई आदमी धर्मवान नहीं बन सकता । हमें जीवन में धर्म धारण करना है तो अपने भीतर धर्म का दर्शन करना शुरू कर देना होगा । तब अपने आप धर्मवान होने लगेगे । शील सदाचार इसलिए पालन करना है कि जब शील सदाचार तोड़ते ही हम अपनी हानि करने लगे । जब जब शील सदाचार तोड़ा क्रोध जगाया या वासना जगाई या भय जगाया या ईर्ष्या जगाई या अहंकार जगाया तब तब बड़े दुखियारे हो गए क्योंकि कुदरत यह नहीं चाहती । कुदरत की यह रजा नहीं है या यों कहें परमात्मा का यह हुक्म नहीं है । परमात्मा की यह रजा नहीं है कि हम अपने मन में विकार जगाएं । विकार जगाएंगे तो दंड मिलेगा ।

कर्म का फल निश्चित

राज्य के कानून तोड़ने पर किसी को दंड मिल सकता है ,कोई दंड से बच भी सकता है । लेकिन कुदरत का कानून तोड़नेवाला नहीं बच सकता । तुरंत दंड मिलेगा देर नहीं होगी । क्रोध जगाया तो तुरंत अशांति जाएगा बेचैन हो जाएगा । चित्त को निर्मल करके मैत्री जगायी करुणा जगायी सद्भावना जगायी तो तुरंत शांति हो जाएगा । बड़ी शांति मिलने लगेगी बड़ा सुख मिलने लगेगा । अपने को चाहे जिस नाम से पुकारता रहे हिन्दू कहे जैन कहे ईसाई कहे

मुस्लिम कहे बौद्ध कहे या कुछ के । अपने मन को निर्मल कर लिया विकार नहीं जगाया तो प्रकृति उसे सुख शांति ही देगी और तत्काल देगी । और वह सुख शांति बढ़ती चली जाएगी । विकार जगाएगा तो दुख आएगा । जो बढ़ती ही चला जाएगा बढ़ता ही चला जाएगा ।

इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति ।

इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुंजो उभयत्थ नन्दति ॥

यदि पाप का काम करना है तो यहां भी बड़ा दुखी हो जाएगा आगे भी बड़ा दुखी हो जाएगा । पाप का काम क्या है । अपने मन को मैला करना ही पाप का काम है । यदि पुण्य का काम करता है चित्त को निर्मल करने का काम करता है यहां भी सुखी होगा, आग्र भी सुखही होगा । यह भारत की पुरानी भाषा है और यह उसका सही अर्थ है । जैसे जैसे विपश्यना करेगा यह सारा विज्ञान समझ में आने लगेगा । यह क्या हो रहा है ? यहकैसा प्रपंच चल रहा है । बाहर की हकोड़ बात हमें अच्छी नहीं लगी और हमने क्रोध पैदा किया तो अपने मन को क्रोध के स्वभाव का खाद्य दिया । दूसरी बार वैसी अवस्था आते ही फिर क्रोध पैदा करेंगे हमने फिर वही खाद्य दे दिया । जितना खाद्य दिया उतना हमारा क्रोध का स्वभाव बढ़ता ही गया । आज तो व्याकुल हैं ही, आगे भी जब जब अनचाही बात होगी तब तब व्याकुल ही होंगे ।

इसके विपरीत घटना चाहे जैसी घटी पर हमने तो अपने मन में मैत्री ही जगाई । दूसरेके प्रति करुणा ही जगाई । कोई गाली देता है तो इसका मतलब है कि उसके मनमें क्रोध जागता है । क्रोध जागा है तो बेचारा बड़ा दुखियारा है क्योंकि मुझमें भी जब क्रोध जागता है तो तब मैं बड़ा दुखियारा हो जाता हूँ उ। उसने गाली दी उसमें क्रोध जागा है बड़ा दुखियारा है उस पर करुणा आएगी उस पर गुस्सा कैसे आएगा । क्रोध कैसे आएगा । विपश्यना में पकने लगेगा धर्म में पकने लगेगा तो करुणा जगाएगा मैत्री जगाएगा सद्भावना जगाएगा । इस प्रकार हमने अपने मानस को करुणा का मैत्री का सद्भावना का खाद्य दिया । दूसरी बार फिर वैसी घटना घटी । हमने फिर करुणा और मैत्री का खाद्य दिया । अब स्वभाव ही ऐसा बनने लगा जो स्वभाव क्रोध पैदा करके हमें व्याकुल बनाया करता था वह पलटने लगा । अब मन को शांत बनाने लगा सुखी बनाने लगा । विकार जगाने का स्वभाव होगा तो केवल आज दंड नहीं मिला बल्कि यह स्वभाव जिना मजबूत होता जाएगा भविष्य में भी उतना ही दंड मिलता चला जाएगा । और मैत्री क्या करुणा जगाने का स्वभाव होगा तो आज सुख नहीं मिले बल्कि यह स्वभाव जितना पुष्ट होत चलला जाएगा भविष्य में भी उतना ही सुख मिलेगा । सारी बात एक वैज्ञानिक की तरह समझ में आने लगेगी फिर धर्म को एक विज्ञान मान लेंगे और संप्रदाय की सी उलझनें दूर हो जाएगी । चाहे कोई यह मान्यता माने या व मान्यता मानें मानता रहे । चाहे कोई ऐसा कर्माकांड करे या वैसा करे करता रहे । पर अपने मन को तो सुधारे । और उसे गहराईयों तक सुधारे ।

ऊपर ऊपर से सुधारने के बहुत सारे तरीके होते हैं । मन का ऊपर ऊपर तो चित्त का केवल 5 प्रतिशत ही हिस्सा होता है जिसे परित्त चित्त याने छोटा चित्त कहा । बाकी

उसका सारा सारा अपरिचित्त चित्त तो अंधा है । वह बुद्धि की कोई बात सुनने को तैयार नहीं । उसे जब जब कुछ अप्रिय लगेंगा तो राग पैदा करेगा ही । जब जब अप्रिय लगेगा तो द्वेष पैदा करेगा ही । वह और कोई बात सुनने को तैयार नहीं होता । न गीता की सुनेगा न कुरान की सुनेगा न त्रिपिटक की सुनेगा न भागवत की सुनेगा न गुरु महाराज की सुनेगा । यह अपरिचित्त चित्त का अंधा है । उसका तो स्वभाव ही ऐसा हो गया है शरीर पर सुखद संवेदना होती है तो राग पैदा करती है । हम उसका स्वभाव तोड़ नहीं सकते तो नशे में रखने वाले इन आस्रवों से कैसे मुक्त होंगे । इस नशे की वजह से पता ही नहीं चलता कि भीतर क्या हो रहा है । यह पता लगाने के लिए ही विपश्यना करनी है । अपने भीतर की सच्चाइयों का अनुभव करने के लिए ।

समझना पर्याप्त नहीं अभ्यास आवश्यक

जानने का काम नहीं करेंगे और केवल प्रवचन सुनकर या पुस्तक पढ़कर खुश हो जाएंगे या केवल धर्म की प्रशंसा सुनकर खुश हो जाएंगे हां अब धर्म समझ में आ गया । धर्म तो बहुत अच्छा होता है बहुत कल्याणकारी होता है । हम कहां हिन्दू धर्म में कहां बौद्ध धर्म में कहां ईसाई धर्म में उलझ गए । धर्म अपने आप में ही कल्याणकारी होता है । यह तो कुदरत का कानून है विज्ञान है । समझ तो गए पर इससे क्या लाभ हुआ । क्या मिला वैसे के वैसे ही विकार पैदा किए जा रहे हैं । वैसे के वैसे की व्याकुल हुए जा रहे हैं । केवल बुद्धि विलास करके ही रह गए । इसका अभ्यास अनुभूतियों के स्तर पर करना आवश्यक है । भारत का यह बहुत पुराना रोग है । बहुत बड़ा रोग है । बातें बहुत करेंगे धर्म की भी बड़ी बड़ी बातें करेंगे । किसी देश में धर्म की इतनी चर्चा नहीं होगी जितनी भारत में । धर्म पर इतने ग्रंथ हैं कि पहाड़ जेसा ढेर लग जाए । धर्म का पालन करें या न करें धर्म की बातें जरूर करेंगे आज उन गुरु महाराज का प्रवचन है चलो सुनते हैं । आज अमुक पंडितजी का प्रवचन है चलो सुनते हैं । आज उन मौलवी जी का उन पादरी जी का उन मुनिजी का उन स्वामी जी का उन भिक्षुजी का प्रवचन है चलो सुनें । तो भाई आज यह सिनेमा आया , इसको देख लिया । कल दूसर आया उसको भी देख लिया । संसार के जंजाल में बड़े व्याकुल रहते हैं । थोड़ी देर मन बहलाना है चलो धर्म के नाम पर मन बहला लिया । तारीफ करेंगे आज बड़ा अच्छा प्रवचन हुआ बड़ा आनन्द आया । पर बाहर गया तो फिर वैसा का वैसा ही । कुछ भी अंतर नहीं पड़ा । कैसे अंतर पड़ेगा ? अपने भीतर की सच्चाई देखी नहीं । देश का यह रोग कैसे निकले ?

भारत के एक संत ने देखा सारे देश में केवल बुद्धि विलास और वाणी विलास है काम कोई नहीं करता । तो संत कहता है

कथै, बदै सुणै सब कोई,,

कथै न होई, सुणै न होई कीयै कोई ।

कथै - सब लोग बहु त कहते हैं धर्म की बात । बदै बोलते है बहुत बोलते हैं धर्म की बात सुनै- सुनते हैं धर्म की बात । तो संत अपने अनुभव से कहता है । केवल कहने से सुनने से बोलने से कुछ नहीं मिलेगा । कीयै होई - धर्म धारण करो तब उसका लाभ होगा । धारण हुआ तभी धर्म है अन्यथा कोरी बात है बुद्धि विलास है वाणी विलास है । केवल अपना भावावेष जगाना है उससे कुछ नहीं मिलेगा । जरा जरा सा भी धारण करने लगे तो उतना उतना ही कल्याण होने लगेगा । अधिक धारण करना शुरू कर दिया तो अधिक कल्याण हुआ । धर्म धारण करने से किसी पर कोई अहसान नहीं कर रहे । हम रोगी हैं हमें अपना रोग दूर करना है तो हम औषधि लेते हैं । हम राग के रोगी हैं क्रोध के रोगी हैं भय के रोगी हैं अहंकार के रोगी हैं । धर्म वह औषधि है जा राग दूर रखेगी द्वेष दूर रखेगी भय दूर रखेगी वासना दूर रखेगी । हमें यह औषधि लेनी है ।

केवल दवा की प्रशंसा करें या जिस वैद्य ने दवा दी उसकी प्रशंसा करें उसको नमस्कार करें तो हमसे बड़ा अभाग और कौन होगा । कोई आदमी प्यासा है प्यास के मारे उसका गला सूखता हो पास में नदी बहती है और वह नदी को नमस्कार करता है पानी को नमस्कार करता है और कहता है । अहा पानी का क्या कहना सब की प्यास बुझाता है । पर पानी की एक बूंद भी नहीं पीता तो अभाग ही रह जाएगा । आदमी भूखा है रोटी सामने पड़ी है पर खाएगा नहीं सिर्फ रोटी को नमस्कार करेगा तो अभाग है । जो लोग केवल धर्म की प्रशंसा करके रह गए जो लोग केवल धर्म को प्रणाम करके रह गए वे अभागे ही रह गए । उन्हें धर्म का लाभ नहीं हुआ ।

भवसागर को तैर कर पार करना है दुःखसागर को पार करना है तो तैरना सीखना होगा । धर्म यही है और कुछ नहीं । कैसे तैर कर दुःखसागर को पार कर लें कैसे तैर कर भवसागर को पार कर लें । शील समाधि और प्रज्ञा - धर्म के तीन चरण हैं जो सीख ले वही पार उतर जाएगा । क्योंकि तैरना सीख लिया । धर्म का यह जो व्यवहारिक पक्ष है वह हमारे लिए बड़ा कल्याणकारी है । सब के लिए कल्याणकारी है और यही करना है । बहुत कहा बहुत सुना । अब करने की बारी आयी है । धर्म गंगा के तट पर बैठ कर कल कल निनाद सुन लिया बड़ा अच्छा लगा । इस पर से बहती हुई ठंडी हवा का आनंद ले लिया बड़ा अच्छा लगा । अब डुबकी लगाएं और भीतर की गहराई में जो सीप है उसे प्राप्त करें उसके अंदर का मोती प्राप्त करें । कल्याण हो जाएगा । मुक्त हो जाएंगे ।

धर्म का बीज सबके अंदर है । यह बीज ऐसे ही रह जाए विकसित न हो फूले न फले नहीं तो मनुष्य जीवन खो दिया । हमारे पास धर्म का बीज है एक अवसर भी आया है जिससे यह पनप सकता है फल सकता है हमारा कल्याण हो सकता है । कहमने वह अवसर खो दिया तो अपना ही नुकसान कर लिया । तो भाई अवसर को खोना नहीं है । यह बीज है इसे विकसित करें । यह फूलित फलित हो अपने भले के लिए अपने मंगल के लिए अपने कल्याण के लिए । किसी पर अहसान नहीं कर रहे । धर्म धारण करने में सबका मंगल है सबका कल्याण है सबकी स्वस्ति मुक्ति है ।

सबका मंगल हो
सकबा कल्याण हो
सबकी स्वस्ति मुक्ति हो